बन्दनवार

श्री शम्भूदयाल सक्सेना

नवयुग ग्रन्थ कुटीर
बीकानेर

मुद्रक
एजूकेशनल प्रेस
बीकानेर

क्रम

१	मातेश्वरी	१
२	'घर वहि में होती'	६
३	विवाहिता कुमारी	१४
४	डाक-मुंशी	२८
५	मृत्यु-शेष	४०
६	विरोधी	६०
७	बच्ची	६६
८	तारा	७१
९	निस्तेज	८१
१०	इत्यारा	९७
११	अपराधन	११६
१२	निष्फल-स्वप्न	१२४
१३	मन की रानी	१३१

मूल्य १ •

प्रकाशक
नवयुग ग्रन्थ कुटीर
बीकानेर

मुद्रक
एजुकेशनल प्रेस
बीकानेर

क्रम

१	मातेश्वरी	१
२	'यह यदि मैं होती'	६
३	विवाहिता कुमारी	१४
४	काक-भुशुंडी	१८
५	मृत्यु-शेष	४०
६	विरोधी	६०
७	कली	६६
८	तारा	७१
९	निर्दयी रव	८१
१०	इत्यादि	९७
११	व्यवधान	११६
१२	निष्फल-यत्न	१२४
१३	मन की रानी	१३३

बन्दनवार

(कहानी संग्रह)

मातेश्वरी

सवेरे लहलहाते हुए बाग में मुझे उठाया। उसमें एक कली खिली थी। शाम को भोला आया और उसकी महक को चुरा ले गया। दूसरे दिन वह अनमनी होकर धूल में पड़ी थी।

रंगमहल में रहनेवाली विलासिनी न जाने कैसे और किस अपनी पसन्द की। वह खिसककर पीछे हट गई। कामनाएँ मसल गईं — प्रेम ग़मगीन हो गया। महल से निकलकर वह कुटी की छाया में रहने लगी।

कौन —विलासिनी?

नहीं वही जगन्माता!

[दो]

"उसकी सम्पत्ति कुबेर का खजाना थी कुटी में रहकर गरीब सुख पसन्द किए होंगे?" पथिक ने पूछा।

"नहीं वह अभागी थी। कठिन दुर्भिक्ष में छूट गई—अगणित कीड़े-मकोड़ों की उदर-ज्वाला में भस्म हो गई—पुजारी ने कहा दिया।

"बुर्मिज में ?"

"हां रही-सही महामारी में ।

"अब ?

"हाथों को मलती और चम के लिए तरसती होगी ।'

[तीन]

पुजारी ने पूछा—"देख लिया ?"

"हां पर वह जगह ख़ाली है । कहीं पवित्र स्थान में चलकर बैठें । —पथिक ने कहा ।

पुजारी ने मन्दिर का द्वार खोल दिया । पथिक ने सहमकर आंखें बन्द कर लीं ।

'क्यों, चलोगे नहीं ?

"मरुक में प्रवेश से भय लगता है । यह क्या मन्दिर है ? पुजारी, पागल तो नहीं हो गये हो ?"

'मूढ़ क्या कहता है ? देख सामने ठाकुरजी विराजते हैं ।"

"तुम्हारी आंखों की कमजोरी पर मुझे तरस आता है । मैं तुम्हें पथाशक्ति उधर जाने से रोकूंगा ।

'अभागा भस्म हो जायगा ।"

पथिक ने आकाश की ओर देखकर आंखों को मूंद लिया और कहा—"आओ अब तुम देखोगे ।"

[चार]

मध्याह्न के अंगारों में पथिक आगे-आगे था और पुजारी पीछे। सामने सड़क पर एक बालक हैजे से पीड़ित पड़ा था। विलासिनी ने अपनी गोद में उसका लथपथ शरीर रख लिया था। पुजारी ने कहा—"आगे चलो।"

एक घर में सात प्राणी थे। दो लड़के, तीन लड़कियां स्त्री और पुरुष। पुरुष मर चुका था। स्त्री-पुत्र और दो लड़कियां मरणासन्न—शोक मूर्छा-व्याप्त से बेचैन। पुजारी का हृदय पसीज गया पर वे थे अछूत। विलासिनी वहां भी आ गई। पुजारी ने पथिक की ओर देखा। वह निर्विकार था।

मुंह घुमाते ही सामने कई चिताएं लपटें ले रही थीं। एक युवक संसार की समस्त करुणा को हृदय से लगाकर बिलख रहा था। पुजारी की आंखें सजल हो गईं। उस युवक का सारा परिवार उसे अकेला छोड़ गया था। पुजारी ने सोचा—उसका कोई नहीं है। क्योंकि वह अस्पृश्य था। विलासिनी वहां भी आ गई। उसने युवक पर अंचल की छाया करके कहा—'क्यों रोते हो?"

कहा—गई मेरी मां।"

'आओ, मेरी गोद में।"

"हा, पिता।"

"वह मैं हूं।

"प्यारी तारा।"

'इधर देखो।"

पुजारी वहीं अपना माथा पकड़कर बैठ गया। पथिक ने सावधान कर कहा—अरे यह तो अपवित्र श्मशान है!

[पांच]

'कहां हो—पुजारी!

"दिव्य लोक में।"

यह क्या है!"

'चिरन्तन ज्योति।

"ठहर चलने की वीणा कौन बजा रहा है!"

मातेश्वरी।

सच कहना विश्वामित्री तो नहीं!

"अजी, जगन्मिथ्या के लिये, यह क्या कहते हो!

"—और यह द्वारपाल!

'ओह! यही ठाकुरजी तो हैं।"

[छः]

पुजारी मन्दिर से चलते चलते रुक गया और कहा—"यहां कहां!

"क्यों!"

'उस कुटी में ये म!"

"और अब ?

'यही तो—अब यहां कैसे आ गये ?"

"मन्दिर या कुटी में तो मैं नहीं रहता ।

'तो ?

मैं रहता हूं प्रेम और सौहार्द में—और तुम कहां चले ?"

वहीं जहां आप द्वारपाल बने थे ।

नहीं, वहां जाने की अब आवश्यकता नहीं ।

पुजारी ने माथा चरणों में झुका दिया और सजल आंखों को पोंछकर देखा, चांदनी का अमृत भरा किरण रेशारी के रंगीन अधरों और मरखम्मुल हुक के कंकाल का साथ ही साथ चूम रही थी । उसने झटपट मन्दिर से निकलकर रोते हुए अन्त्यज को गले लगाकर सान्त्वना दी । पुजारी पवित्र और मन्दिर क्षीर-सागर हो गया ।

'वह यदि मैं होती'

अलि में एक अस्पताल गया था। वहीं रोगियों के एक कमरे के सामने मेरे कान में एक बहुत क्षीण स्वर में ये शब्द पड़े— 'वह यदि मैं होती!'—फिर सब शांत हो गया। मालूम पड़ा किसी ने या तो कहनेवाले के ओठों पर हाथ रखकर आवाज़ बंद कर दी या उसकी अन्तिम श्वांस सहसा शून्य में विलीन हो गई।

अस्पताल से लौटने पर वह हल्की-धीमी आवाज़ एक हजार मन लोहे का बोझ बनकर मुझे दबाने लगी। सुखमय निश्चिन्त जीवन में एक अप्रत्याशित चिन्ता का तन्तु जी को बेध कर मालूम पड़ा।

जीवन की तमाम विकट और दुखदायी परिस्थितियों से निकल चुका था। चिन्ता के वे अहाताम कर्मों के बीत चुके थे। भाग्य का सितारा जगमगा रहा था। समाज में मान प्रतिष्ठा साधनों में विद्या-बुद्धि का आतंक पूरी तरह जम चुका था। मेरे चरित्र में लोगों के लिये 'सत्यं शिवं सुन्दरं' का सामञ्जस्य स्थापित हो चुका था।

गांव में अपनी सलाह थाने जमींदारी थी। धन धान्य से घर की शोभा अनन्त गुनी हो गई थी जिस पर भी मैं था एकमेव पात्र। अपने आसामियों के लिये मैं गौरव की वस्तु था। दूर दूर तक गांवों में

मेरी मेधावी की धाक थी। वहाँ ऐसा पढ़ा लिखा भला था ही कौन जमींदार ?

इन सब बातों के अलावा मेरे कोमल और एकाई स्वभाव ने और भी मेरे लिये लोक-प्रियता का संचय कर रक्खा था। मैंने रियाया के लिये कई सुविधाएं कर दी थीं। यहां तक कि सरकारी अफसर मेरे साम्यवादी होने का संदेह करने लगे थे। वे सब मेरी उपेक्षा करने लगे थे; पर मैंने कभी उनसे मान पाने की उत्कंठा नहीं की। इसीसे मैं अपने लोगों का बहुत प्यारा था। जिस दिन मेरी पुश्तैनी बन्दूक जब्त करली गई थी, उस दिन मैंने भी अपने आपको बहुत कुछ बन्धनमुक्त समझ लिया था। मेरे असामियों ने तो एकमत होकर मुझे बधाइयां दी थीं और कहा था—आप इस सरकारी मान से दूर ही रहें तो अच्छा। मैं उनका इतना प्रिय था कि एक बार मेरे भूल कर डालने पर भी किसी को कानों-कान खबर न होती।

घर में मेरी सुन्दरी स्त्री थी और थी चहकती हुई मैना-सी एक छोटी सुकुमार बालिका। गत छः मास से मेरी स्त्री दूसरे बच्चे की मां होने वाली थी। सभी हितैषियों ने इस बार एक मत होकर पुत्र के पूर्ण लक्षण निश्चित कर दिये थे। मेरी श्रीमती तो कष्ट होते हुये भी इस समाचार से खिली पुखराजकी की तरह हर्षोत्फुल्ल दिखाई पड़ती थी। मैं आनन्दातिरेक से खिल रहा था। आह! कैसा सौभाग्यशाली था मैं!

घर में आराम और सुख था। द्वार के बाहर कीर्ति और स्नेह। जीवन स्वतन्त्र आनन्द और मंगलमय था। मैं कभी भूलकर भी किसी वेदना-पूर्ण जीवन की कल्पना नहीं कर सकता था पर क्या कहूं अबस

अस्पताल से लौटा हूँ तबसे हालत कुछ अजीब सी हो गई है। हृदय उमड़ कर मुँह को आने लगा है। एक अज्ञात अन्तर्वेदना से हृदय और विचारों में तुमुलकारी आन्दोलन खड़ा हो गया है। यद्यपि अभी तक उस वाणी का कोई स्पष्ट आकार ध्यान में नहीं आया था।

मैं परेशान था यह अनन्त चिन्ता और व्यथा किस प्रकार दूर की जावे। उस दिन मिश्रमहाशय का चटल पहरा न हुआ। [illegible] कुछ सुहाता न था [illegible] गया था। स्त्री का मन्द मधुर मुसकान का रस फीका सा लगा। [illegible] अनाकर अपने खिलौनों को गुड़-गुड़ाकर [illegible] पर आज उनके मनोमुग्धकर बालचापल्य से मुझे शान्ति न मिली। वेदना, चिन्ता और अशान्ति के उस मेघमय पहाड़ के कारण मेरा तो दम घुटने लगा। खाना नहीं खाया गपशप नहीं की हँसा बोला नहीं—जाकर सिर-दर्द का बहाना करके आँखों को छिपाकर अपने कमरे में लेट गया।

जब तक जागता रहा एक आन्तरिक व्याकुलता से जी घबड़ाता रहा। अनेक तरह की करुण दुखद कल्पनाएँ मन में उठती रहीं। पर अन्त तक मैं यह न समझ सका कि मेरा मानसिक विचार किस अविच्छिन्न सम्बन्ध के कारण उठ खड़ा हुआ है। दुनियाँ में नित्य नई सुन्दर मार्मिक सहस्रों घटनाएँ हुआ करती हैं, पर किसी का प्रभाव तो इस प्रकार हृदय में एक गहरी लकीर नहीं खींच जाता। उस शय्या में क्या था? क्यों मेरा हृदय [illegible] के लिए आतुर हो रहा है? बड़े शरीर का [illegible] एक [illegible] यन्त्रणा के साथ एक प्राण हो जाना

अस्पताल से लौटा हूँ तबसे हालत कुछ अजीब ही हो गई है। हृदय उमड़ कर मुँह को आने लगा है। एक अज्ञात अन्तर्वेदना से हृदय और विचारों में युद्धदायी आन्दोलन खड़ा हो गया है। यद्यपि अभी तक उस वाणी का कोई स्पष्ट आकार ध्यान में नहीं आया था।

मैं परेशान था वह अनन्त चिन्ता और व्यथा किस प्रकार दूर की जावे। उस दिन मित्रमण्डली का चहल पहल में छुट्टी का सब भार थी। कुछ सुहाता न था। खाना बेस्वादपना [illegible]। स्त्री का मन्द-मधुर मुसकान का रस फीका सा लगा। [illegible] आकर अपने [illegible] [illegible]। पर आज उसके मनोमुग्धकर बाल्यावस्था से मुझे शान्ति न मिली। वेदना, चिन्ता और अशान्ति के [illegible] पहाड़ के कारण मेरा दम घुटने लगा। खाना नहीं खाया [illegible] उठा को [illegible] नहीं—जाकर सिर-दर्द का बहाना करके आँखों को छिपाकर अपने कमरे में लेट गया।

जब तक जागता रहा एक आन्तरिक व्याकुलता से भी घबड़ाता रहा। अनेक तरह की कटु-दुखद कल्पनाएँ मन में उठती रहीं। पर अन्त तक मैं यह न समझ सका कि सारा मानसिक विकार किस अविच्छिन्न सम्बन्ध के कारण उठ खड़ा हुआ है। दुनियाँ में नित्य नई दुखद मार्मिक सहस्रों घटनाएँ हुआ करती हैं, पर किसी का प्रभाव तो इस प्रकार हृदय में एक गहरी लकीर नहीं खींच जाता। उस शब्दों में क्या था? क्या मेरा हृदय एकान्त [illegible] हृदयधन को आतुर हो रहा है? क्या शहर का राम-राम एक [illegible] कल्पना के साथ एक मात्र हो जाना

पु पत्ती पड़ चुकी थी जिसकी गहरी रेखा समय के व्यवधान से मिटने पर आगई थी। जब मैं अपनी पूर्व वेग से उसके लिए पश्चात्ताप के आंसू बहाने जा रहा था कि अकस्मात् कमरे के द्वार खुलने से मेरी निद्रा भंग हो गई।

मेरी श्रीमती ने भीतर आकर मुझे बताया कि आज शाम को उसकी मृत्यु अस्पताल में हो गई। लोग पूछेंगे किसकी ?—मेरी स्त्री ने तो उसका नाम मुझे बताया था पर मैं किस तरह बताऊं ? जिसे मैंने हृदय से, मन से और विचार से निकाल दिया था जिसके सारे सामीप्य को मैंने अपरिसीम दूरी में परिणत कर दिया था। जिसे अस्पृश्य अन्त्यज की भांति, विषैले रोगों के कीटाणुओं की भांति, निष्ठुरता से अरक्षणीय मान लिया था, आज उसका नाम कैसे लूं ?

किन्तु आज नौ बरस बाद उसके मरने का समाचार सुनकर मैं तुरन्त उसके घर की ओर चल पड़ा। अपने यहां किसी ने नहीं जाना कि मैं कहां जा रहा हूं। जिसे स्मृति-मन्दिर से बहिष्कृत कर दिया था, उस घर की मलिन प्राचीरों के भीतर पहुंचा तो वहां केवल हिलते हुए वृक्षों का पाया न किसी आदमी का निशान था न जीवन का स्पन्दन। उसके घर की हालत कंकाल शेष वृद्ध की तरह शीर्ण हो गई थी। जिस घर में एक बार परीक्षा पास हो जाने के बाद मैंने उसकी भोली गृहस्वामिनी को आशाओं की रुपहली मृगमरीचिका दिखाई थी वहां आज श्मशान की शान्ति छा रही थी। मेरी आंखों से आंसुओं की गंगा बह चली। वहीं खड़े खड़े मैंने एक बार वे सब बातें सोच डालीं।

एक समय था मेरे पास मोटरसाइकिल थी। उसी के धक्के से बलराम गिरकर बेहोश गया था। उस समय मेरी उमंगों का सारा विकास छिन्न-भिन्न हो गया था और जब डाक्टर ने आकर उसकी अंतिम घड़ियों की सूचना दे दी थी तब तो भयंकर संकट का अनुमान लगाना कठिन था। उस समय परिवार और प्रतिष्ठा किसी की सहायता से काम निकलनेवाला नहीं था पर स्वयं बलराम ने उस समय मुझे नया जीवन दे दिया था। उसने एक कागज पर अपने कंपित और मरणासन्न हाथों से डाक्टर की उपस्थिति में लिख दिया था—"मैंने स्वयं आत्महत्या करली है। विधवा माता और क्षुद्र बहन के ऊपर अपना पढ़ाई का बोझ डालकर उनके कष्टमय जीवन को और दुखमय बनाने से उसका न रहना ही अच्छा होगा।"

उस प्रशंसनीय दान पत्र को लेते समय मेरी अन्तरात्मा लज्जा से नत हुई जा रही थी। मैंने भी एक साहसी पुरुष की तरह उससे प्रार्थना की थी कि वह मुझे कोई सेवा का भार दे जाय। बड़े अनुनय-अनुराग के बाद उस महान उदारात्मा बलराम ने अपनी छोटी-बहन सावित्री के जीवन की देख-रेख का उत्तरदायित्व इन निकम्मे कन्धों पर रख दिया था। हाय! मेरी वह आडम्बरपूर्ण वीरता! हाय मानवीय प्रवंचना!—पर उस समय मैं अपनी अक्षमता का विचार न कर सका था।

बालिका सावित्री और उसकी सरला माँ ने मेरी बातों का विश्वास कर लिया था। उस समय तो मुझे भी यही जान पड़ता था कि संवेदना-विहीन त्याग ही परम पवित्र वस्तु है। कर्तव्य के साथ जब निर्वाह के साथ

विवाहिता कुमारी

फूल खिलना जानता है और मुरझाना भी। शकुन्तला हँसना जानती थी, रोना नहीं। मुसकान ही उसके अधरों पर खेली थी। आँसू ने उसके कपोल का स्पर्श नहीं कर पाया था।

वसन्त कली का शृङ्गार करता है; आशा ने उसके मन को मुकुलित किया था। कौमुदी कुमुदनी की शोभा निखारती है; सरल भोलेपन ने उसके हृदय को मञ्जुल किया था।

उसका शरीर कुन्दन की तरह नहीं हलकी बदली की तरह था उसका मुख चन्द्र की तरह नहीं सुरभित मेघ की तरह था। उसका केश-विन्यास कुसुम-गुम्फित नहीं शैवालजाल की तरह था। उसकी उँगलियों में कलियों का मौकुमार्य और सौंदर्य नहीं कटीले की पटुता थी। उसके बालों में कदाच का विलास नहीं थी सरल चितवन की स्निग्ध रमणीयता उसका कंठ कोकिल की तरह नहीं मयूरी की तरह था। उसका गान प्रेम संगीत की तरह नहीं, प्रार्थना की तरह था। वह कल्पना और कविता की तरह नहीं धर्म-शास्त्र की तरह थी। वह देवी नहीं मानवी थी। उसका शरीर नहीं मन सुन्दर था।

उसने अपना हृदय अपने प्रेमी वसन्त को दे रखा था। उसे

तरह, जैसे माधवी लता अपने फूलों का हार माली को उतार देती है। उसने अपने मन के मन्दिर में वसन्त की मूर्ति चित्रित कर रक्खी थी। वह उसकी आंखों का बन्दी था और उसके निराले शैशव और सरल भोलेपन का दास।

शैवालिनी के मां नहीं विमाता भी न थी। था केवल एक पिता। पिता के आंगन को उसके दूसरे बहन या भाई ने कभी अपनी हँसी से आलोकित नहीं किया था। वही उस घर की अकेली दीप-शिखा थी। नीम और आम की छाया से आच्छादित और बगीचे से घिरा हुआ उसके पिता का घर महर्षि कण्व का छोटा आश्रम था। शैवालिनी शकुन्तला थी। मृग-छौना उसने पाल रक्खा था। लताओं को उसने सींच सींचकर बड़ा रक्खा था। कभी उसके एक सखी भी थी। उसका नाम था मालिनी। बड़ी हितैषिणी, बड़ी प्यारी और बड़ी स्नेहशीला। बचपन की उसकी वह सखी एक मधुर स्मृति छोड़कर अपने भाई के साथ कहीं चली गई थी। बरसों के परदे ने उस स्मृति पट को झीना कर दिया था। उन दिनों वसन्त ही उसके मनोजगत का सुखद्रु था।

[दो]

उसका विवाह कहां हुआ था। सौ साल की लड़की के सामने ग्यारह साल की उम्र का लड़का कहां जंचता है? तिस पर वसन्त नवदूर्वा की तरह लजीला, कुमुदिनी की तरह संकोच शील, कपास की तरह मोला और सरोज की तरह सुकुमार था। उसके स्नेह में मृदुलता थी स्वभाव में

विवाहिता कुमारी

फूल खिलना जानता है और मुरझाना भी। शकुन्तिनी हँसना जानती थी, रोना नहीं। मुस्कान ही उसके अधरों पर खेली थी। आँसू ने उसके कपोल का स्पर्श नहीं कर पाया था।

वसन्त कली का शृङ्गार करता है। आशा ने उसके मन को सुरभित किया था। कौमुदी कुमुदनी की शोभा निखारती है; सरल मोहोपन ने उसके हृदय को मस्कुल किया था।

उसका शरीर कुन्दन की तरह नहीं, हल्की बदली की तरह था। उसका मुख चन्द्र की तरह नहीं सुरमई संध्या की तरह था। उसका केश-विन्यास कुसुम-गुम्फित नहीं शैवालजाल की तरह था। उसकी उँगलियों में कलियों का मौकुमार्य और सौंदर्य नहीं कटीले की चतुरता थी। उसकी आँखों में कटाक्ष का विलास नहीं थी सरल चितवन की स्निग्ध रमणीयता। उसका कंठ कोकिल की तरह नहीं मयूरी की तरह था। उसका गान प्रेम-संगीत की तरह नहीं, प्रार्थना की तरह था। वह कल्पना और कवित्व की तरह नहीं धर्म शास्त्र की तरह थी। वह देवी नहीं मानवी थी। उसका शरीर नहीं मन सुन्दर था।

उसने अपना हृदय अपने प्रेमी वसन्त को दे रखा था। उसी

तरह, वैसे मालती लता अपने फूलों का हार माली को उतार देती है। उसने अपने मन के मन्दिर में वसन्त की मूर्ति चित्रित कर रक्खी थी। वह उसकी आंखों का बन्दी था और उसके निराले यौवन और सरल भोलेपन का दास।

शैवालिनी के मां नहीं विमाता भी न थी। था केवल एक पिता। पिता के आंगन को उसके दूसरे बहन या भाई ने कभी अपनी हँसी से आलोकित नहीं किया था। वही उस घर की अकेली दीप शिखा थी। नीम और आम की छाया से आच्छादित और बगीचे से घिरा हुआ उसके पिता का घर महर्षि कण्व का छोटा आश्रम था। शैवालिनी शकुन्तला थी। मृग-छौना उसने पाल रक्खा था। लताओं को उसने सींच-सींचकर बड़ा रक्खा था। कभी उसके एक सखी भी थी। उसका नाम था मालिनी। बड़ी हिलोरिणी, बड़ी प्यारी और बड़ी स्नेहशीला। बचपन की उसकी वह सखी एक मधुर स्मृति छोड़कर अपने भाई के साथ कहीं चली गई थी। बरसों के परदे ने उस स्मृति-पट को झीना कर दिया था। उन दिनों वसन्त ही उसके मनोजगत का सूर्यांशु था।

[दो]

उसका विवाह नहीं हुआ था। सौ साल की लड़की के सामने ग्यारह साल की उम्र का लड़का कहां जँचता है! तिस पर वसन्त मधुरपू की तरह सजीला, कुमुदिनी की तरह संकोच शील, कपास की तरह भोला और सरोज की तरह सुकुमार था। उसके स्नेह में मृदुलता थी, स्वभाव में

विवाहिता कुमारी

फूल खिलना चाहता है और मुरझाना भी। शकुन्तिनी हँसना चाहती थी, रोना नहीं। मुस्कान ही उसके अधरों पर खेली थी। आँसू ने उसके कपोल का स्पर्श नहीं कर पाया था।

वसन्त कली का शृङ्गार करता है आशा ने उसमें मन को सुरभित किया था। कौमुदी कुमुदनी की शोभा निखारती है। सरल भोलेपन ने उसके हृदय को मञ्जुल किया था।

उसका शरीर कुन्दन की तरह नहीं, रजकी बदली की तरह था। उसका मुख चन्द्र की तरह नहीं सुरभरे सेब की तरह था। उसका केश-विन्यास कुसुम-गुम्फित नहीं शैवालजाल की तरह था। उसकी उँगलियों में कलियों का सौकुमार्य और सौन्दर्य नहीं कटीले की पटुता थी। उसकी आँखों में कटाक्ष का विलास नहीं थी सरल चितवन की स्निग्ध रमणीयता। उसका कंठ कोकिल की तरह नहीं मयूरी की तरह था। उसका गान प्रेम-सङ्गीत की तरह नहीं, प्रार्थना की तरह था। वह कल्पना और कवित्व की तरह नहीं धर्म-शास्त्र की तरह थी। वह देवी नहीं मानवी थी। उसका शरीर नहीं मन सुन्दर था।

उसने अपना हृदय अपने प्रेमी वसन्त को दे रखा था। उस

[तीन]

वसन्त को सम्राट् बनने की धुन थी। शैवाल के पिता सहमत थे। शैवाल राजरानी होगी आह! उनके गौरव का क्या ठिकाना? आदमी के मन के अंतिमस्थल के लिए विवाह का यह विरव भी क्षुद्र है। नारी का त्याग और पुरुष की कामना दोनों ही निस्सीम हैं। एक की सार्थकता पहले में, तो दूसरे की अन्तिम में ही है।

एक दिन शैवाल के पिता ने अनेक आशीर्वचनों के साथ उसे, वसन्त को विदा कर दिया। शैवाल को दोनों ने समझाया—उसका जाना बहुत थोड़े समय के लिये है इतने थोड़े समय के लिये जितने में कोई बालिका मिलनातुरता से पागल नहीं हो सकती।

चलते-चलते वसन्त ने एकान्त में अवसर देखकर उससे कहा—तुम डरो नहीं विवाह से पहले हम दोनों मिल जायेंगे।

शैवाल तो विवाह की कुछ आवश्यकता ही न समझती थी पर उन दिनों उसकी चर्चा इस ओर से चल रही थी कि उसे भी ख्याल हो गया जैसे यह तिथि अब बहुत दूर नहीं है। वह यहीं कहीं आने के लिये तैयार बैठी है। बहुत संभव है नदी में उस पार पड़ी हुई डोंगी पर चढ़कर वह कल ही किसी समय आकर द्वार खटखटाने लगे।

इतने थोड़े समय में वह आकर कुछ कर जायेगा जिससे हम लोगों का जीवन सुखमय हो जाय तो बड़ी अच्छी बात है। वह चला जाय। मैं कभी उसके मार्ग की दीवार नहीं बनूंगी।

सादगी थी और व्यवहार में सौजन्य। उसने शुभा शैवालिनी को भाते थे। उसके पिता का पसन्द थे। अतः विवाह न होने पर भी वाग्दान हो गया था। शैवाल ने तो उससे भी पहले वसन्त को अपना समझ लिया था।

कैसी सुन्दर समझ थी और कैसी अनुपम धारणा। एक दिन शैवाल के चुने हुए फूलों की माला पहनकर वसन्त ने एक गाना गाया। कैसा सुन्दर था वह गान। कैसी मधुर थी वह स्वर-लहरी। लेकिन उसका भाव अच्छा नहीं था शैवाल के कानों को खटकता था। उसमें महत्वाकांक्षा की ध्वनि थी। यश की कामना थी और ख्याति का भाव।

शैवाल उदास हो गया। कुछ दिन लता का पुष्प-गुच्छ उसके गुलाबी कपोलों का स्पर्श करना तथा कल न भूल रहा था। उसे तोड़ कर उसने बखेर दिया। मृगछौना फूलों की दो एक पंखुरियाँ मुँह में लेकर उसे प्यार करने आया था उसे भी उसने मना कर दिया। वसन्त यह भाव-परिवर्तन समझकर बोला—शैवाल तुम्हारा यह ढंग ठीक नहीं है। देखो भाग्य की रेखाएँ। मुझे सम्राट् का मुकुट धारण करना है।

शैवाल ने रूठकर कहा—तो जाओ करो न।

वसन्त—और तुम्हें मेरी रानी बनना है।

शैवाल—भाग्य में है तो यहाँ भी सम्राट् बन जाओगे न होगा मैं यहीं पिता से कहकर तुम्हें एक सुन्दर मुकुट बनवा दूँगी। उसे पहनकर यहाँ पहाड़ियों पर घूमना हरियाली पर शासन करना। मैं ऐसी ही रानी बनना चाहती हूँ।

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। बात यहीं रह गई।

[तीन]

वसन्त का सम्राट् बनने की धुन थी। शैवाल के पिता सहमत थे। शैवाल राजरानी होगी आज। उनके गौरव का क्या ठिकाना? आदमी के मन के अंतिमस्थल के लिए विलासता का यह विश्व भी क्षुद्र है। नारी का त्याग और पुरुष की कामना दोनों ही निस्सीम हैं। एक की सार्थकता पहले में, तो दूसरे की अन्तिम में ही है।

एक दिन शैवाल के पिता ने अनेक आशीर्वचनों के साथ उसे, वसन्त को विदा कर दिया। शैवाल का होना ने समझाया—उसका जाना बहुत थोड़े समय के लिये है, इतने थोड़े समय के लिये जितने में कोई बालिका मिलनाकुलता से पागल नहीं हो सकती।

चलते-चलते वसन्त ने एकान्त में गलबाहीं देकर उससे कहा—तुम डरो नहीं, विवाह से पहले हम दोनों मिल जायेंगे।

शैवाल तो विवाह की कुछ आवश्यकता ही न समझती थी पर उन दिनों उसकी चर्चा इस ओर से चल रही थी कि उसे भी ख्याल हो गया कैसे यह तिथि अब बहुत दूर नहीं है। वह यहीं कहीं आने के लिये तैयार बैठी है। बहुत संभव है नदी में उस पार पड़ी हुई डोंगी पर चढ़कर वह कल ही किसी समय आकर द्वार खटखटाने लगे।

इतने थोड़े समय में वह आकर कुछ कर आयेगा जिससे हम लोगों का जीवन सुखमय हो जाय तो बड़ी अच्छी बात है। वह चला जाय। मैं कभी उसके मार्ग की दीवार नहीं बनूँगी।

मुहूर्त पूछकर वह जाने लगा तो शैवाल ने हँसी-खुशी उसे विदा दी। केवल विलग होते समय आँखों के कोने ओस से फूल की तरह भीग गये थे। उत्साह के साथ रोने का यह सामान बड़ा ही विचित्र था।

[चार]

उसकी प्रतिज्ञा को लेकर कई पत्र आये, पर उसके दर्शन का मंगल-मुहूर्त कहीं मार्ग में ही अटक गया। उसके आने में इतनी देर लगी कि कली का एक-एक अरमान हवा के झोंके साथ उड़ गया। शैवाल, प्रेम पुत्तलिका शैवाल की उम्र अपना रास्ता तय करती हुई आगे बढ़ने लगी।

समाचार मिला, वह अगले पक्ष आयेगा। उस महीने में तो वह अवश्य ही चल देगा। अमुक तिथि के प्रातःकाल की प्रथम किरण के साथ उसके प्रस्थान करने का मुहूर्त है। वह निश्चित समय पर अपने स्थान से प्रस्थान कर चुका है। मार्ग ने उसके स्वागत को घास की चादर आड़ रक्खी है। आकाश ने इन्द्र-धनुष की लहरोंवाले बादल के वस्त्र पहन लिये हैं। दिशाओं ने दक्षिण-पवन की साड़ी से अपने को सजा कर रक्खा है। पहाड़ियों ने फूलों की आँखें खोलकर उसके स्वागतार्थ अपूर्व वन्दनवारें सजा रक्खी हैं। वह आज नहीं तो कल और कल नहीं परसों उदित शशि के साथ-साथ अवश्य ही शैवाल के द्वार पर पहुँच जायगा।

शैवाल ने भी जुही और चमेली, गुलाब और मौलसिरी, बेला और सिंगारी के फूलों की मालाएँ गूँथ-गूँथकर रेशमी पुरट पट से ढक रक्खी थीं। हृदय के मुकामल रथसों में कितने अरमान चयन कर रक्खे थे।

हाव। पर सब कुछ पड़ा रह गया। सुना गया कि वह आकर भी लौट गया। कोई बहुत आवश्यक काम था। इतना आवश्यक कि जिसके समक्ष शैवाल का मूल्य कुछ भी न था। शैवाल रो पड़ी। अपने हृदय को दबा लिया। बस्ती अपने दुर्भाग्य का क्या करे। किन्तु नहीं उनका आना ही ठीक है जिससे उनके मन की आकांक्षाएं पूर्ण हो जायें। उन्हें मुकुट मिल जाय। राजछत्र उनके ललाट पर सुशोभित हो। मेरा भी तो ललाट तब सूना नहीं रहेगा।

फिर सुनने में आया—महाराज ने उन्हें गोद ले लिया है। महाराज मृत्यु-शय्या पर पड़े हैं। शीघ्र ही अब वे महाराज के पद पर अभिषिक्त होंगे। शैवाल व्यग्र हो उठी, वह सोचने लगी—अब मैं लड़कपन की पगली नहीं हूं जो उन्हें राजपाट छोड़कर चले आने की सलाह दूं। नहीं, अब वे सम्राट् हों क्योंकि मुझे भी तो साम्राज्ञी होना है।

[पांच]

पूरे उन्तीस साल के व्रत नियम भी वसन्त को शैवाल के पास न ला सके पर क्या एक क्षण को भी उसे निराशा हुई। सूर्य का आदर्श का, विष्णु का, इन्द्र का और मरुतों का ध्यान भी उसे एक पग आगे न बढ़ा सका। पर कोई भी उसके क्रोध का भाजन न बना।

आषाढ़ी पूर्णिमा का पर्व था। सूर्य अपनी सुनहली किरणों को काली घटा की बन्दी से अस्ताचल की ओर खींच रहे थे। शैवाल दीपक जलाकर भागीरथी की आरती करके ज्योंही ऊपर आई त्योंही उसे मालूम हुआ कि उसके घर पर कोई अतिथि आया है।

शैवाल चौंक पड़ी—मेरे घर पर और अतिथि ! संसार की भयावह विपत्तियों ने भी जहाँ का आतिथ्य स्वीकार करने का कष्ट नहीं किया वहाँ कौन आयेगा ! मुझे कौन जानता है इस संसार में ! स्वर्ग से लौटकर कोई अतिथि होने का आता नहीं। पिता-माता दोनों ही स्वर्ग पहुँच चुके हैं। राजमुकुट मस्तक पर धारण करके पूरे उन्तीस साल बाद क्या कोई आ सकता है !

शैवाल का हृदय धड़क उठा। उसकी संवेदनशिराएँ बिजली से उत्तप्त हो गईं। अतिथि ! अतिथि !—करती हुई वह मन्द-मुग्ध-सी अपने घर की ओर चली पर वास्तव में उसे अपने शरीर का भान नहीं था।

द्वार के सामने संध्या के अन्धकार में एक परछाईं हिल रही थी। दूर पर लता-वृक्षों की छाया में सघन कुञ्ज-प्रदेश आलोकित हो रहा था। दूर्वा पर चलती हुई शैवाल धीरे धीरे आकाश में उठने लगी। उसे प्रतीत होने लगा कि आज कण्व का आश्रम दुष्यन्त के आगमन से महोत्सवमय हो उठा है। उसके चालीस गालवाले जर्जर शरीर में मुग्धा शकुन्तला के मधुर हाव भाव तरङ्गित होने लगे। उसे प्रतीत होने लगा जैसे सचमुच ही उसका बहरूप-बचपन चलते-चलते करील के काँटों में उलझता जा रहा है।

द्वार के समीप पहुँची तो पुरुष नहीं किसी स्त्री की छाया आकृति थी। शैवाल मनकी अवस्था को मौन के आवरण में लपेटे उस मानवमूर्ति के सामने जा खड़ी हुई और उसे पहचानने का यत्न करने लगी। छाया दिखी साड़ी की सरसराहट और आभूषणों की मधुर झनकार के साथ

एक रमणी उठकर खड़ी हो गई और उसने बढ़कर पुकारा—शैवाल मेरी प्यारी शैवाल ! सखी, कहो तुम अच्छी तो हो ?—वह बढ़कर शैवाल के शरीर से लिपट गई ।

सहसा शैवाल के मुंह से भी निकल गया—मेरी प्यारी मालिनी ! तुम अबतक कहां थी ?

कहां कहूं बहन दुनिया की ऊंची-नीची तरंगों का उत्थान पतन देख रही थी । यश और आनन्द, आशाएं और उनकी पूर्ति में भी मनुष्य का संतोष नहीं होता । वह सदा अप्राप्य की आशा में भटकता रहता है । अभाव मात्र के लिए छटपटाता है और भाव अपने उस अभावमय जीवन की ओर उन्मुख रहता है ।—हां और तुम कैसी रहीं ?"

मैं, मुझे तो तुम देख ही रही हो । मेरे जीवन में पर्वत की अचलता, तपोवन की साधना और तूफान की अशान्ति का एक अद्भुत मिश्रण सदा ही बना रहा है ।"

"वही तो देखती हूं बहन तुम इतने ही दिनों में संन्यासिनी-सी दिखने लगी हो । यह क्यों ?—और तुम्हारा वह बगीचा कैसा है ? मैंने और तुमने जो आम के पेड़ लगाये थे वे कैसे हैं ?"

एक भूली स्मृति शैवाल के अन्तःप्रदेश को मथने लगी । वह बोली—सखी वे वृक्ष तो अब पहाड़ की चोटी से बातें करने लगे हैं । उनके वैभव की बात तो मन मन में भी एक कहानी हो गई है ।—और बहन अपना वह दिल का बच्चा हाय ! बेचारा कैसा सुन्दर था, कभी का मर चुका है । उसके कारण अब उन मजरी से झुके हुए वृक्षों के पास

जाने का भी नहीं करता है।

मालिनी ने कुछ रुककर कहा—उसकी अधखुली आँखें तो अभी तक मुझे याद हैं और उसका वह फुरकना हाथ! कैसा सुन्दर था! एकाएक शशाल को सखी के ये शब्द याद आ गये कि तुम कैसी सन्यासिनी सी दिखती हो? उसके दिल पर ठेस लगी वह तो अबतक अपने को भावी साम्राज्ञी ही समझ रही थी।—लेकिन उसने कुछ कहा नहीं।

दोनों सखियाँ बड़ी देर तक अपने गत जीवन की बातें करती रहीं।

थोड़ी देर में तीन चार अंगरक्षकों के साथ दो बालक आये। सिरीष से कोमल और गुलाब से प्रफुल्ल। उन्हें आते देखकर मालिनी ने कहा—बहन! ये तुम्हारे ही बच्चे हैं। बड़े को स्वामी ने आने नहीं दिया है। वह अपने पिता का बहुत प्यारा है। फिर बच्चों से कहा—बिमू! अपनी मौसी को प्रणाम करो। किशनू! तुम भी प्रणाम करो।

लड़कों ने माँ की आज्ञा का पालन किया। शशाल ने बारी बारी से दोनों को चूमकर आशीर्वाद दिया। उसकी सूनी गोद आज मातृ-स्नेह से पवित्र हुई।

मालिनी ने बच्चों को भेज दिया आप थोड़ी देर और बैठी रही।

माता-पिता की मृत्यु के दुख-सुख के साथ विवाह की बातें चल पड़ीं। मालिनी ने शशाल से पूछा—बहन और तुम्हारा विवाह कहाँ हुआ है? वैवाहिक जीवन की कुछ बातें बताओ।

शशाल ने कहा—विवाह हो गया है, पर वे बहुत दिनों से विदेश

चले गये हैं। कब आते हैं, उन्हीं की प्रतीक्षा में हूं।

मालिनी—मैं तीर्थ यात्रा को निकली हूं तुम अपने स्वामी का पता मुझे देना। मैं अवश्य ही उन्हें पर भेजूंगी। बड़े दुख की बात है मैं तुम्हारे स्वामी से परिचित नहीं हूं पर तुम तो बहन मेरे स्वामी से भली भांति परिचित हो। हम लोग अक्सर तुम्हारी चर्चा चलाकर बीते दिनों की याद करते हैं। उसने अपने स्वामी का परिचय दिया। उसीके हृदयेश्वर का अपना स्वामी बतानेवाली उस वाल्यसहचरी को शैवाल भला फिर अपने स्वामी का क्या परिचय देती?

उसका शरीर कांपने लगा। पैर के नीचे की पृथ्वी खिसकने लगी। सिर पर आकाश घूमने लगा। सारा संसार अंधकार से आच्छन्न हो गया। उस अंधकार में मालिनी के कान्तिमान मुखमंडल को देखकर शैवाल को प्रतीत हुआ कि वह अवश्य ही साम्राज्ञी और मैं सम्वाहिनी—नहीं, पथ की भिखारिणी हूं।

कुछ देर ठहरकर मालिनी ने विदा ली। उसको समय नहीं था। प्रातःकाल प्रस्थान करना था और इधर शैवाल का हृदय अपना स्थान छोड़ रहा था। वह दुख से दीन हो रही थी। उसी दशा में उसने अपनी सखी को विदा दी। कह दिया—स्वामी का पता और परिचय सब लिखकर भेज दूंगी।

[६]

क्षुब्ध, प्रताड़िता, विरह विधुरा, अपमानिता और तिरस्कृता

शीशाल शून्य आकाश की ओर दृष्टि लगाये अपने पूर्व जीवन को प्रत्यक्ष कर करके देखती और दुखी होती रही। दुख क्रोध और ग्लानि के विमिश्रित भावों से उसका मन भर गया। वह सोचने लगी—मेरे विश्वास ने मुझे धोखा दिलाया है। दुनिया के उपन्यासों कहानियों और इतिहासों—सभी में तो अनेक बार भोली-भाली कन्याओं के ठगे जाने के रोचक वृत्तान्त मिले हैं। मेरी सरलता ही ने मेरे सुख का नाश कर दिया। पर नहीं, उन्होंने ही मेरे साथ विश्वासघात किया है। अपराध का दण्ड तो उन्हें मिलना ही चाहिए किन्तु एक भिखारिन के लिए एक सम्राट को दंड देने का कौन साहस करेगा? मैं तो कुछ नहीं कर सकती। हां एक पत्र लिखकर अच्छी तरह उन्हें फटकार सकती हूं। बस मैं एक कड़ा-सा पत्र उन्हें लिखती हूं।

कहीं भूल से गलती हो गई हो, और वे उसका प्रायश्चित्त करने के लिए तैयार हो जायं? कहीं वे मेरे आंसू पोंछने के लिए, गुस्सा शान्त करने के लिए, दौड़कर मेरे पास आ जायं तब मैं क्या करूंगी? जो बात हो चुकी है वह लौट नहीं सकती। मुझे जब त्याग करना चाहिए था तब की न थाकर तो वो ही चला गई। अब अभिलाषाओं को समाप्त करने के लिए उन्हें चिन्तित करने की आवश्यकता ही क्या है? पर जब आज उनका पता मिल गया है तो मैं उन्हें एक पत्र अवश्य लिखूंगी। हाय! पर लिखूं क्या? यह भी तो समझ में नहीं आता।

उन्होंने मुझे बताया तो बहुत है पर अब उस चर्चा का समय कहां? मैं उनके हृदय को दुखाऊं ही नहीं। तो अब कौनसा अरमान बाकी

रह गया है ? जिसके लिए कुछ लिखने बैठूँ। व्यर्थ है सब व्यर्थ है। हाँ एक बात लिख सकती हूँ। वह मेरे जीवन का अन्तिम अभिलाषा है। मेरा समस्त जीवन एक स्वप्न का खेल ही तो रहा है। सम्भव है गोधूलि के इस धुँधले प्रकाश में सत्य से स्पर्श हो सके तो मैं अपने का कृतार्थ समझूँगी। बस इसीलिये लिखूँगी।

कुमारी होकर भी मैं जिनकी बनी रही हूँ उन्हें मैं अवश्य लिखूँगी कि वे उसी तरह मुझे पुनर्वरण करने का मुझे दिलासा दें। उनके तीन बच्चे हैं। एक मेरे पास आजायगा। आ हा! कैसा सुन्दर होगा वह बालक। उसकी मीठी तोतली बातों में कितना स्वाद होगा। मैं सुख जाऊँगी। मुझे सब कुछ मिल जायगा।

पत्र तो लिख गया। मेरे दशा से वे मर्माहत अवश्य हो जायेंगे। उनके नेत्रों में दया झलक उठेगी। इसके बावजूद बाकर में व्याकुल दुखी का क्रन्दन है। इसकी पंक्ति-पंक्ति में पद्मा की मूक रागिनी है और उनका हृदय भी तो पत्थर का नहीं। उन्हें शीघ्र ही सहानुभूति है। वह अवश्य विमल आनन्द पान पाता हो जायगा। मेरे भाग्य के सितारे का वह शीतल-बिन्दु होगा। संवेदना के आकाश में उनका उदय होगा और दया के वातावरण में पा पाकर होकर उसकी शीतल किरण किरणें मेरे शुष्क प्राण अन्तःकरण में सुधा सिंचन करेंगी। यह पत्र उनके हाथ में होगा और मेरा पुत्र मेरी गोद में। तो बहनों मुझे मत रोको। अभी भेजती हूँ। पर क्या मैं जीवन निशा के समस्त पहरों में एक सुन्दर स्वप्न नहीं देख सकती हूँ? प्रभु का भिक्षा माँगकर अब पुत्र की भिक्षा माँगने का साहस नहीं

हो रहा है। अभी तक मैं उनकी साम्राज्ञी बनने का स्वप्न ही तो देख रही थी। वह जागृत और प्रत्यक्ष से कितना भला था।

बस, मैं अपने प्रेम-पत्र की इस अभिलाषा को स्वप्न ही से प्रत्यक्ष कर लूँ तो कितना सुन्दर हो। जैसे मैंने उन्हें अपना सर्वस्व मानकर जीवन लिख दिया था। उसी प्रकार यह भी मान लेती हूँ कि उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। पुत्र को मेरे पास भेज दिया है। मैं उसे खिलाती हूँ। दुलारती हूँ। वह किलकिलाता है। हँसता है। मुझे माँ-माँ कहता है। मेरा यह स्वप्न नहीं कल्पना नहीं परम सत्य है। पत्र लिखते ही तमाम काम बन गया तो अब उसे क्यों भेजूँ? भिखारिणी को बिना माँगे मोती मिल गया तो वह क्यों याचना करे? चालीस वर्ष की अवस्था में लालसाओं की सुनहली स्याही से लिखा हुआ मेरा यह प्रेम पत्र लेटर बक्स में नहीं मेरे रत्न-जटित आभूषणों के साथ सुहाग की गुलाबी साड़ी में तह किया हुआ बड़ी हिफाजत से रक्खा रहे। क्योंकि इसमें मेरे सुखमय जीवन का एकमात्र आलोक स्मृति के रूप में बिखरा हुआ है। शैशव काल में जिन सुकुमार कुसुमों का चयन किया था। उन्हीं को पूर्वानुराग के रेशमी सूत में फिर विरह के मखमली धागे में सुबह से शाम तक गूँथ-गूँथ कर सुरभित दिव्य हार तैयार किया था और जिस अब तक उरान्तर में छिपाये हुए थी आज—आज वही तो निखरकर इस पर आ पड़ा है। फिर इसे लेटर-बक्स में क्योंकर डालूँ? इसमें मेरा सुख है। मेरी स्मृति है। मेरा गौरव है। यह मेरी आँखों के सामने ही रहे तो अच्छा। इसी से इसे रख लेती हूँ। यह रहे मेरी सुहाग की साड़ी में क्योंकि इसने मुझे रही-

वही लालसा का साक्षात् करा दिया है ।

ईवाल ने बड़े यत्न से मोड़कर वह पत्र तार-तार हो रही अपनी सुहाग की साड़ी में रख लिया । उस समय उसके आनन्द का ठिकाना नहीं था । सचमुच ही अनिर्वचनीय रूप से उसका कलेवर शिथिल हो रहा था । रात्रि के प्रथम दो प्रहर व्यतीत हो चुके थे । उसके घर की दीपशिखा धीरे धीरे मलिन हो रही थी। सुदूर वनान्त में राजमहिषी मालिनी देवी के प्रस्थान की तयारियाँ हो रही थीं । वे कोमल बालक उनके अञ्चल में खेल रहे थे । ईवाल भी अपने कल्पना प्रसूत पारिजात-कोमल पुत्र का धीरे-धीरे, हँस-हँसकर, सिरक सिरककर चुम्बन कर रही थी । उसका सुख कितना सत्य और रमणीय था ।

हो रहा है। अभी तक मैं उनकी साम्राज्ञी बनने का स्वप्न ही तो देख रही थी। वह जाग्रत और प्रत्यक्ष से कितना भला था।

बस मैं अपने प्रेम-पत्र की इस अभिलाषा को स्वप्न ही से प्रत्यक्ष कर लूँ तो कितना सुन्दर हो! जैसे मैंने उन्हें अपना सर्वस्व समर्पण कर जीवन निशा बिता दी। उसी प्रकार वह भी मान लेती हूँ कि उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। पुत्र को मेरे पास भेज दिया है। मैं उसे खिलाती हूँ। दुलारती हूँ। वह किलकिलाता है। हँसता है। मुझे मां-मां कहता है। मेरा यह स्वप्न नहीं कल्पना नहीं परम सत्य है। पत्र लिखते ही तमाम काम बन गया तो अब उसे क्यों भेजूँ? भिखारिणी को बिना मांगे मोती मिल गया तो वह क्यों याचना करे? चालीस वर्ष की अवस्था में लालसाओं की सुनहली स्याही से लिखा हुआ मेरा यह प्रेम-पत्र लेटर बक्स में नहीं मेरे रत्न-जटित आभूषणों के साथ सुहाग की सुनहली साड़ी में तह किया हुआ बड़ी हिफाजत से रक्खा रहे। क्योंकि इसमें मेरे सुखमय जीवन का रत्नखिम आलोक स्मृति के रूप में बिखरा हुआ है। शैशव काल में जिन सुकुमार कुसुमों का चयन किया था। उन्हीं को पूर्वानुराग के रेशमी सूत में फिर विरह के मखमली धागे में सुबह से शाम तक गूँथ-गूँथ कर गुम्फित दिव्य हार तैयार किया था और जिस अब तक उरान्तर में छिपाये हुए थी आज—आज वही तो बिखरकर इस पर आपड़ा है। फिर इसे लेटर-बक्स में क्योंकर डालूँ? इसमें मेरा सुख है। मेरी स्मृति है। मेरा सर्वस्व है। यह मेरी आंखों के सामने ही रहे तो अच्छा। इसी से इसे रख लेती हूँ। यह रहे मेरी सुहाग की साड़ी में क्योंकि इसमें मुझे रही

सही साधना का साक्षात् करा दिया है ।

ईशान ने बड़े बल से मोड़कर वह पत्र तार-तार हो रही अपनी सुहाग की साड़ी में रख लिया । उस समय उसके आनन्द का ठिकाना नहीं था । उचमुच ही अनिर्वचनीय रूप से उसका कलेवर शिथिल हो रहा था । रात्रि के प्रथम दो प्रहर व्यतीत हो चुके थे । उसके घर की दीपशिखा धीरे-धीरे मलिन हो रही थी । सुदूर वनान्त में राजमहिषी मालिनी देवी के प्रस्थान की तैयारियां हो रही थीं । दो कोमल बालक उसके अञ्चल से खेल रहे थे । शैवाल भी अपने कल्पना-प्रसूत पारिजात-कोमल पुत्र का धीरे-धीरे, हँस-हँसकर, निरख-निरखकर चुम्बन कर रही थी । उसका सुख कितना सत्य और रमणीय था ।

डाक-मुंशी

मेरा भाग्य उलटा है या सीधा यह सदा मेरे लिए एक उलझी पहेली रहा है। मैं कभी उसे सुलझाकर समझ न सका। कभी एक क्षण के लिए भी उसकी मीमांसा न कर पाया। मूर्ति की भांति होकर अपने विषय में स्वस्थ चित्त से कभी भी निश्चिंत विचार धारा में बहकर मन की हरारत को मिटा न पाया।

शैशव आकाश में उड़ा था सुनहले स्वप्नों में खेला था। जवानी अमावस के अंधकार में बढ़ी हुई चिन्ता की कंटक शून्य निराशा में उसने हरारत की लोरी ली। अंतर अवसान। विधाता की लीला देखिए। सब कुछ देकर कुछ भी न दिया और कुछ भी न देकर इतना बहुत सामने डाल दिया है—मैं सोचता हूं जिस पर नहीं पाता हूं दृष्टि के अंधकार से जिसे पढ़कर नहीं पाता हूं।

मैं नया डाक मुंशी हूं। यह नौकरी मुझे अनायास मिल गयी है इसीलिए मैं यह भी तय नहीं कर पाता हूं कि यह मेरे सौभाग्य का चिह्न है या अभाग्य का फल। मैं अचानक इसके लिए तैयार न था। यह आप ही आकर गले पड़ गयी। धन छोड़ते भी नहीं बनता है। सच पूछो तो छोड़ने की इच्छा भी नहीं होती।

मैंने गरीब के घर जन्म लेकर रईस की लड़की का पाणिग्रहण किया था उस उमर में जब शादी एक खेल थी। मैं ग्यारह बरस का था मेरी बीवी अठारह साल की। उस वक्त मुझे इतना ही मालूम था कि यह जोड़ी मिलाने के लिये मेरे ससुर ने मेरे बाप से मुझ मातृहीन को खरीद लिया था। अमीर को गरीबों पर जो घृणा और नफरत होती है उसी से मैंने बार-बार अपनी जन्म तिथि की अवमानना की थी। मैं मास्टर पर घूमता था। घर पर तीन-तीन मास्टर लगे थे। एक अंग्रेजी पढ़ाता था एक हिसाब और एक मातृ भाषा। लेकिन स्वप्न की वह सुनहली रात बहुत थोड़े दिन रही। आवश्यक करते करते मेरे ससुर मेरे लिए कुछ भी न कर सके। न जाने कौनसा संशय या संस्कार उन्हें रोकता रहा। लेकिन उनकी यह अभिलाषा अवश्य थी कि अपनी और मेरे सिवा उनका उत्तराधिकार किसी का न मिले। उनकी अभिलाषा उन्हीं के साथ चली गयी। मां-बाप हीन भिखारी (मेरे बाप मर गुजरे थे) के साथ सुकुमारी दुलारी अर्धांगी का साथ भी विडम्बना के रूप में गुजर गया। हम दोनों अबोध और अनभिज्ञ थे। अचानक ससुर चल बसे। कोई ट्रस्ट नहीं बनाया कोई लिखा पढ़ी नहीं की किसी से कुछ कहा भी नहीं। हम दोनों रोते रह गये। अर्थी के साथ ने हम दोनों का रोने भी न दिया।

स्वार्थ का तो होना ही है वह दुःखहीन भी होता है। उसे अनाथों और दुखियों की सिसक की अनुभूति होती ही नहीं। अर्थी को साथ ने घर पर रख लिया और मुझे बाहर जाकर रुपया कमाने की सलाह दी। अनंत संपत्ति के उत्तराधिकारी को भी कभी-कभी जरूरतें

डाक-मुंशी

मेरा भाग्य उलटा है या सीधा, यह सदा मेरे लिए एक उलझी पहेली रहा है। मैं कभी उसे सुलझाकर समझ न सका। कभी एक क्षण के लिए भी उसकी मीमांसा न कर पाया। तृप्ति की सांस लेकर अपने विषय में स्वस्थ चित्त से कभी मैं निश्चित विचार धारा में बहाकर मन की हरारत को मिटा न पाया।

शैशव आकाश में उड़ा था सुनहले स्वप्नों में खेला था। जवानी अमावस के अंधकार में बढ़ी हुई विधवा की करुण शून्य निराशा में उसने हताश्वास की सांसें लीं। अंतर स्वयंज्ञान! विधाता की लीला देखिए। सब कुछ देकर कुछ भी न दिया और कुछ भी न देकर इतना बहुत सामने डाल दिया है—मैं झोली में जिसे भर नहीं पाता हूं दृष्टि के अंचल से जिसे बटोर नहीं पाता हूं।

मैं नगर डाक मुंशी हूं। यह नौकरी मुझे अमावस मिल गयी है इसका मैं यह भी तय नहीं कर पाता हूं कि यह मेरे सौभाग्य का चिह्न है या अभाग्य का फल। मैं सचमुच इसके लिए तैयार न था। यह आप ही आकर गले पड़ गयी। बस छोड़ते भी नहीं बनता है। सच पूछो तो छोड़ने की इच्छा भी नहीं होती।

मैंने गरीब के घर जन्म लेकर रईस की लड़की का पाणिग्रहण किया था। उस उमर में जब शादी एक खेल थी। मैं ग्यारह बरस का था मेरी भी जयन्ती ग्यारह बरस की। उस वक्त मुझे इतना ही मालूम था कि यह जोड़ी मिलाने के लिये मेरे ससुर ने मेरे बाप से मुझ मातृहीन को खरीद लिया था। अमीर को गरीबी पर जो घृणा और नफरत होती है, उसी से मैंने बार-बार अपनी जन्म तिथि की अभ्यर्थना की थी। मैं माटर पर घूमता था। घर पर तीन-तीन मास्टर लगे थे। एक अंग्रेजी पढ़ाता था एक हिसाब और एक संस्कृत भाषा। लेकिन स्वप्न की वह सुनहली रात बहुत छोटी निकली। आजकल करते करते मेरे ससुर मेरे लिए कुछ भी न कर सके। न जाने कौनसा संशय का संस्कार उन्हें रोकता रहा। लेकिन उनकी यह अभिलाषा अवश्य थी कि जयंती और मेरे सिवा उनका उत्तराधिकार किसी को न मिले। उनकी अभिलाषा उन्हीं के साथ चली गयी। मां बाप हीन भिखारी (मेरे बाप मर चुके थे) के भाग्य के साथ सुकुमारी कुमारी जयंती का भाग्य भी विडम्बना के सूत्र में गुंथ गया। हम दोनों अबोध और अनभिज्ञ थे। एकाएक ससुर चल बसे। कोई ट्रस्ट नहीं बनाया कोई लिखा पढ़ी नहीं की किसी से कुछ कहा भी नहीं। हम दोनों रहते रह गये। जयंती के चाचा ने हम दोनों का रोने भी न दिया।

स्वार्थ अंधा तो होता ही है वह हृदयहीन भी होता है। उसे अनाथों और दुखियों की सिसक की अनुभूति होती ही नहीं। जयंती को चाचा ने घर पर रख लिया और मुझे बाहर जाकर रुपया कमाने की सलाह दी। अनंत संपत्ति के उत्तराधिकारी को भी कभी-कभी उदरपूर्ति

के लिए जीविकोपार्जन की जरूरत पड़ जाती है। परिस्थितियाँ सब कुछ करा लेने की क्षमता रखती हैं।

मेरी उम्र के आदमी बिना स्कालरशिप के और किसी उपयोग में शायद बहुत कम आते हैं, पर हमारे ससुर के सहोदर की दृष्टि में मुझे घर पर बिठाकर खिलाना और मेरे लिए पढ़ाई में कुछ खर्च करना दोनों ही फिजूल थे। जिसकी संपत्ति पर सबका भरण पोषण होता था उसी के लिए रोटियों का टोटा था।

न-जाने क्यों अबतक मैं चाचा को बिलकुल निरक्षर समझता था; पर आज देखता हूँ उन्हें भविष्य की लिपि का अच्छी तरह ज्ञान था। वे विधाता की हर एक बात को अच्छी तरह समझते थे। उन्हें मालूम हो गया था कि मेरा अतीत और भविष्य दोनों एक तरह के थे। अमावस की रात में बिजली की चमक की तरह, एक क्षणस्थायी आलोक रेखा मेरे जीवन में कहीं से आ गयी थी; पर उसका अदृश्य हो जाना ही निश्चित था। क्योंकि वह मेरे भाग्य का फल नहीं जननी के भाग्य का फल थी। पर मेरे दुर्भाग्य का प्रबल आकर्षण उसे भी मिटा देने में समर्थ हो गया। अंधकार, केवल अंधकार शेष रह गया।

[दो]

कानपुर के एक अहलिया से मेरे ससुर की बहुत दोस्त-अस्त थी। मेरे भाग्य को बदलने में उसकी इच्छा तो नाममात्र को ही थी विशेष प्रयत्न था मेरे चाचा का। इस वास्ते वहाँ सबके आगे उस बेचारी के निष्कलंक

नाम को लेने की जरूरत ही क्या !

हां, तो शिवा जयंती के और सब लोगों की इच्छा चाचा की बात का समर्थन मात्र थी। मेरे चाचा के एक भी लड़का या लड़की नहीं थी और जयंती मेरी बालिका पत्नी, को खेलाने के लिए एक साथी की जरूरत थी। बस यही मेरे प्रस्थान से दुखी थी। मैं उस समय उसकी मनोव्यथा ठीक तरह नहीं समझ सका। यदि समझता तो शायद मैं कानपुर पहुंचने के लिए उतना उत्सुक न होता। मेरे चाचा ने मेरे मन में कानपुर का कैसा सुन्दर चित्र अंकित कर दिया था। मैं तो उस समय इसी धुन में था कि कब कानपुर देखूं। आखिर मैं घर से चल पड़ा या चलने को विवश हो गया। उस समय मेरी अबोध अर्धांगिनी कठकर एक कोने में खड़ी थी। मैं उसके पास गया—अपने हृदय के साहस को बटोरकर कहा—मैं जाऊं ?

जवाब कुछ भी नहीं।

मैंने फिर कहा— तुम्हारे लिये कानपुर से क्या लाऊं ?

उसने एक ओर का मुंह फेर लिया।

मैंने सप्रेम स्निग्ध कंठ से पूछा—गुड़िया ! खिलौने ! बोलो जयंती क्या लाऊं ? आह, तुम तो बोलती ही नहीं !

कठिन नीरव निश्चल चट्टान के नीचे अनंत स्रोत छिपा रहता है। मौन भी वैसी ही एक प्रकार की चट्टान है। उसे जरा छेड़ने से अन्तर की जल-राशि तुमुलरव के साथ निकल पड़ती है। जयंती रो पड़ी। उसकी सरल कोमल हँसी जिस गालों पर हरदम नृत्य किया करती थी,

बहुत-सा बटोर लिया।

इस बीच में एक बार भी मैं घर नहीं पहुँच सका। बड़ी इच्छा थी। मन ही-मन पुला जाता था। कसक हो चला था। प्यारी जयंती की विदा-समय की करुण-कोमल मूर्ति आँसुओं से धुल-धुलकर उज्ज्वलतर होती जा रही थी। दिन में काम के भार से भार-ग्रस्त रहता और रात्रि को स्मृतियों के अविरल पतझड़ से आहत होकर चुपचाप अपने अस्तित्व को विलीन कर देता था। कानपुर और शाहजहाँपुर में अन्तर ही कितना है? पर मेरे लिए बहुत था। घर पहुँचने का कोई साधन मुझे प्राप्त नहीं था। अपनी किसी चीज पर मेरा अधिकार नहीं था। मेरी तनख्वाह, जो हाल ही में तुली बतायी जाती थी, मेरे ससुर के भाई के नाम जमा होती थी। सच पूछो तो मुझे खुद भी अपने अधिकारों का पता नहीं था। जयंती के पिता ने मुझे खरीद लिया था, न कि उनके भाई ने इतनी मोटी बात भी उस समय मेरी बुद्धि में नहीं आयी थी।

घर जाने की बड़ी उत्कंठा थी बड़ी लालसा। मैंने कई बार पत्र लिखे। बार-बार चाचा को जताया कि मैं अब काफी रुपया पैदा कर चुका हूँ। मैं थक गया हूँ। मैं मर रहा हूँ। अब यहाँ रहने की बिलकुल इच्छा नहीं है। आप मुझे फुरसत बुला लीजिए।

चाचा ने बहुत देर बाद जागकर उत्तर दिया—घबराओ नहीं काम किये जाओ। घर पर आकर क्या करोगे? काम नहीं करोगे तो खाओगे क्या? यहाँ क्या रक्खा है?

मैंने और भी एक पत्र लिखा—आप मेरे खाने की चिन्ता मत

कीजिए। मुझे बुला लीजिए। मैं यहाँ एक क्षण भी अब नहीं रह सकता। आप न बुलावेंगे तो मैं स्वयं चला आऊँगा।

तुरन्त उत्तर आया—अच्छा मैं आ रहा हूँ। वहीं आकर ठीक करूँगा।

मेरे प्राण निकल गये। जानता था क्या होगा? वही हुआ। चाचा उसी शाम को आ धमके। शाम चिट्ठी के साथ-ही-साथ चले थे। आकर मुझे कड़ी तीखी आवाज से भर्त्सित करते हुए कहा—क्या तुम को शर्म नहीं लगती है? यदि आराम ही भाग्य में लिखा होता तो एक धनिकमंग के यहाँ जन्म लेते। अब तुम ऐसे नाजुकमिजाज हो गये हो?

मैं क्या कहता? चुप रह गया। आँखों के आँसू भी स्तम्भित हो गये। सारा शरीर सूखी पत्ती की तरह काँपने लगा।

रात हुई। मैं आकर अपने बिस्तरे पर लेट गया। बड़ी देर का रुका हुआ प्रवाह एकांत पाकर बड़े वेग से बह निकला। मैं सोच रहा था—हाय! मैं गरीबी भी अपनी इच्छा से वरण नहीं कर सकता? मैं कब चाचा से कुछ चाहता हूँ। वे तो सब ले लें पर मुझे और मेरी प्यारी बहनों को तो संसार में मुक्त होकर रहने दें। इसमें उनका क्या आता-जाता है?

चाचा दूर खड़े हुए शायद मेरे मन को समझने का यत्न कर रहे थे। बड़े कोमल और आकर्षित करनेवाले कंठ से बोले—महेश, बेटा! तुम्हें मेरी बातें कड़ुई तो लगी होंगी। दवा कड़ुई ही होती है।

कितनों दिनों बाद चाचा मिले थे। इससे पहले तो शायद कभी

कोई आया नहीं था। बरसों से घर के बाहर पड़े हुये मुझ वियोगी का मन एकाएक पुलकित हो उठा। कुछ घंटे पहले चाचा का मेरे प्रति क्या व्यवहार था यह मैं उस समय याद न रख सका। अभी एक बार नैराश्य और दुःख से रो चुका था अब हर्ष और आनंदातिरेक से रो पड़ा। हिचकियां बंध गयीं आंख फूलने लगी।

कड़ुई दवा के बाद मिश्री की डली-सी देते हुए चाचा ने कहा—मैं तो तुम्हारे भले की कहता हूं। कुछ दिन यहां और रह लोगे, तो आदमी हो जाओगे। अगर जानवर की तरह ही जीवन बिताना चाहते हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।

मैंने अनेक आशाओं से आशान्वित होकर प्रार्थना के से स्वर में कहा—अच्छा तो मैं लौट आऊंगा पर एक बार आप मुझे घर होने चलें। घर जाने की मेरी बड़ी इच्छा है।

चाचा या इस छोटी-सी प्रार्थना को चाचा स्वीकार कर लेंगे। पर उन्होंने नहीं किया। घर होते तो क्या बुराई हो जाती, यह आज तक मेरी समझ में नहीं आया। उन्होंने बहुत कड़ा तरीके से कहा—अच्छा इस बार तो मैं सीधा घर नहीं जा रहा हूं। अब की बार आऊंगा तो अवश्य ही तुम्हें ले चलूंगा। मैं जल्दी ही आऊंगा। तब तक तुम और रहो।

मैं चुप रह गया। तीन वर्ष के बाद बहुत मिलने पर तो उनके दर्शन हुए थे। दूसरी बार अपने आप कितनी जल्दी आ जाऊंगा मैं इसी बात का अनुमान लगाने लगा।

मुबह हुई । चाचा बाजार से बहुत-सी साड़ियां, चोलियां और गहने खरीद कर ले चले । मुझसे कहा—देखो, इस रुपये ठीक से रहना फिर गड़बड़ी मत करना ।

मेरी आंखें रंग-बिरंगी साड़ियों के पुलन्दे पर पड़ रही थीं । चाचा ने न-जाने क्या समझकर कहा ये सब जयंती के लिए ले जा रहा हूँ । उसने बहुत जिद की थी ।

मेरी आंखें आंसुओं से आप्लावित हो आयीं । चाचा चले गये । मैं मन मसोसकर रह गया । जयंती, केवल जयंती की याद भर ही रह गई थी ।

आंसुओं से पलकों को आर्द्र करके मैं चिंतित होने पर चाचा की ले आयी हुई साड़ियों में से कभी लाल कभी आसमानी और कभी बसंती साड़ी में अपनी प्यारी जयंती को अपने सामने प्रत्यक्ष करके देखने लगा। मेरी कल्पना-शक्ति बहुत बढ़ गई थी । साड़ी का उड़ता हुआ अंचल, मेरी बालिका प्रिया का तीव्र मृदुल विलास और उसका मधुर स्मित हास्य मेरी आंखों के सामने नाचते रहते थे । न-जाने क्यों मैं उन दिनों जागृति और स्वप्न दोनों में सिर्फ अपने पर ही दृश्य देखा करता था ।

[चार]

कितना समय बीत गया चाचा नहीं आये । जयंती के मृत्यु-संवाद को लेकर उनकी एक चिट्ठी एक दिन आ पहुँची । मैं आकाश की ऊँचाई से पाताल की गहराई में औंधे मुंह गिर पड़ा । मेरा भी किसी

ाह के निष्ठुर हाथों ने अच्छी तरह मथ डाला ।

अब मैंने समझा, शायद इसीलिए चाचा मुझे नहीं ले गये थे । रा बुला रहे हैं पर अब मैं जाकर करूंगा क्या ? शायद उनसे रोया ी न जाता होगा । मुझे रोने के लिए बुला रहे हैं । मेरे आंसुओं से पनी छाती का शीतल करना चाहते हैं ? मैं क्यों जाऊँ ? अगर रोना ो है तो एकांत में रोऊँगा । ऐसी जगह रोऊँगा जहां से मेरी सिसकी का ता उन्हें न लगे । मेरी स्त्री ने मुझे एकबार मिलने तक न दिया । अब उसी याद में गिरते हुए आंसू देखने के लिए मुझे बुलाते हैं । न न कभी न जाऊँगा ।

तीन दिन मैंने कुछ खाया नहीं पिया नहीं । एक करवट लगातार ता पड़ा रहा । सारी आशाएं मर गयी थीं; जीवन के तमाम ाकल्प दफन हो गये । उसी समय मैंने सुना—कोई बाहर मेरी तलाश र रहा है । जी में सोचा—कह दूं, अब परलोक में ही भेंट होगी । फिर न नहीं माना नीचे उतर गया । सड़क पर एक भलेमानस हाथ में ाड़ी लकड़ी लिए चिंताग्रस्त-से घूम रहे थे । सड़क पर कोई नहीं था । क देखकर पूछा—बेटे यहां कोई महेशचन्द्र रहता है ?

आह ! न जाने कितने बरस बाद अपना पूरा नाम सुन पड़ा । ता चकित रह गया । मेरे ससुरजी मुझे इसी नाम से पुकारते थे । नकी आदत थी । मुझे अधिक से अधिक सम्मान देना ही उनका ध्येय । । शायद वे जानते थे कि उनके बाद मैं किस किस चीज के लिए तरस ाऊँगा । उस उस चीज से वे मुझे अपने जीवन-काल में अच्छी तरह

परिमुग्ध कर गये थे। मेरे मन की कोई साध अतृप्त नहीं छूटी थी।

मैंने बहुत बुरी तरह से झिझककर जवाब दिया—जी, मैं ही महेश हूँ। मुझे अपना पूरा नाम लेने की हिम्मत न हुई। मेरी हालत भी नहीं थी कि पूरा नाम लेकर मैं उनकी धारणा को आश्चर्यचकित करता। फिर भी वे कुछ रुके। फिर मुझसे पूछा—तुम कहाँ रहते हो? किसके लड़के हो?

मैंने सब बता दिया। पर शायद इससे कुछ विशेष उन्हें पता न लगा। उन्होंने मुझसे पूछा—तुम्हारा ब्याह हो गया है क्या?

मेरी आँखें सजल हो गयीं। कुछ जवाब देते न बन पड़ा।

उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारे ससुर का नाम क्या है?

मैंने किसी तरह बता दिया। उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारी स्त्री का नाम क्या जयंती है?

मैंने उनके चेहरे की ओर देखकर कहा—हूँ नहीं था।

मुझसे रहा नहीं गया। मैं बतहाशा रो पड़ा। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और कहा—क्यों रोते क्यों हो? आओ, मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारी स्त्री को ले आया हूँ।

मैं चिल्ला पड़ा—हैं, क्या कहते हैं आप?

उन्होंने कुछ कहा नहीं। मुझे खींचे धर्मशाला में ले गये। उतने रास्ते में मैं कितनी बार मर-मरकर जी गया यह नहीं बतला सकता। मेरी मरी हुई पत्नी भी आयी होगी इसका मुझे जरा भी विश्वास नहीं होता था। फिर भी मैं उस वृद्ध पुरुष के साथ चला जा रहा था।

अहह के निष्ठुर हाथों ने अच्छी तरह मथ डाला।

आज मैंने समझा, शायद इसीलिए चाचा मुझे नहीं ले गये थे। अब बुला रहे हैं पर अब मैं जाकर करूंगा क्या? शायद उनसे रोना भी न आता होगा। मुझे रोने के लिए बुला रहे हैं। मेरे आंसुओं से अपनी छाती को शीतल करना चाहते हैं? मैं क्यों जाऊं? अगर रोना ही है तो एकांत में रोऊँगा। ऐसी जगह रोऊँगा जहां से मेरी सिसक का पता उन्हें न लगे। मेरी स्त्री से मुझे एकबार मिलने तक न दिया। अब उसकी याद में गिरते हुए आंसू देखने के लिए मुझे बुलाते हैं। न न मैं कभी न जाऊँगा।

तीन दिन मैंने कुछ खाया नहीं पिया नहीं। एक कमरे में लगातार रोता पड़ा रहा। सारी आशाएं मर गयी थीं जीवन के तमाम आकर्षण दफन हो गये। उसी समय मैंने सुना—कोई बाहर मेरी तलाश कर रहा है। जी में सोचा—कह दूं, अब परलोक में ही भेंट होगी। फिर मन नहीं माना नीचे उतर गया। सड़क पर एक मुसलमान हाथ में पहाड़ी लकड़ी लिए चिंताग्रस्त-से घूम रहे थे। सड़क पर कोई नहीं था। मुझे देखकर पूछा—बेटे, यहां कोई महेशचन्द्र रहता है?

आफ! न जाने कितने बरस बाद अपना पूरा नाम सुन पड़ा। मैं तो चकित रह गया। मेरे ससुरजी मुझे इसी नाम से पुकारते थे। उनकी आदत थी। मुझे अधिक से अधिक सम्मान देना ही उनका ध्येय था। शायद वे जानते थे कि उनके बाद मैं किस-किस चीज के लिए तरस जाऊँगा। उस-उस चीज से वे मुझे अपने जीवन-काल में अच्छी तरह

परिचय कर गये थे। मेरे मन की कोई साध अतृप्त नहीं छूटी थी।

मैंने बहुत बुरी तरह से झिझककर जवाब दिया—जी, मैं ही महेश हूँ। मुझे अपना पूरा नाम लेने की हिम्मत न हुई। मेरी हालत भी नहीं थी कि पूरा नाम लेकर मैं उनकी शरण का आश्चर्यचकित करता। फिर भी वे कुछ रुके। फिर मुझसे पूछा—तुम कहाँ रहते हो? किसके लड़के हो?

मैंने सब बता दिया। पर शायद इससे कुछ विशेष उन्हें पता न लगा। उन्होंने मुझसे पूछा—तुम्हारा ब्याह हो गया है क्या?

मेरी आँखें झुक गयीं। कुछ जवाब देते न बन पड़ा।

उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारे ससुर का नाम क्या है?

मैंने किसी तरह बता दिया। उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारी स्त्री का नाम क्या जयंती है?

मनेठलके चेहरे की ओर देखकर कहा—है नहीं या।

मुझसे रहा नहीं गया। मैं बतलाता रो पड़ा। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और कहा—क्यों रोते क्यों हो? आओ, मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारी स्त्री को ले आया हूँ।

मैं चिल्ला पड़ा—हैं, क्या कहते हो आप?

उन्होंने कुछ कहा नहीं। मुझे साथ कलकत्ता में ले गये। उतने रास्ते में मैं कितनी बार मर-मरकर जी गया यह नहीं बतला सकता। मेरी मरी हुई पत्नी जी आयी होगी इसका मुझे जरा भी विश्वास नहीं होता था। फिर भी मैं उस वृद्ध पुरुष के साथ चला जा रहा था।

दो। कह दो, वह करे नहीं। अब लो, तुम तो बोलती ही नहीं। इससे तो मैं शक करने लगता हूं फिर वह तो अबोध बालिका है।

राधा—मैं कहती तो हूं चिन्ता छोड़ दो। कौन सदा बना रहता है। मेरी जैसी सौभाग्य मृत्यु तो बहुतों के लिए ईर्ष्या की वस्तु है। तुम तो समझदार हो। अधीर क्यों होते हो? ईश्वर की इच्छा होगी तो अपने कैसे और कला को लेकर रहना लेकिन अभी कौन जानता है क्या होगा?

चरन—राधे! तुम मुझे घबरा न दो। मैं यह एक भी बात नहीं सुन सकता। मालूम नहीं अब इस हृदय में थोड़ा भी आघात सहने की शक्ति नहीं रह गई है। मेरे इस जीवन में कितने असहनीय कष्ट नहीं आये और मैं उनको सह सका हूं; किन्तु आज का यह दुख असहनीय हो रहा है। प्रियतमे! यह बड़ा सा मकान यह रौनक यह ठाट बाट मेरा नहीं है। यह सब तो मेरी लक्ष्मी, तुम्हारे भाग्य का है। इस मैं अच्छी तरह जानता हूं; और इसी से चाहे थोड़ा बहुत इन बच्चों के हिस्से में भी पड़ जाय। नहीं तो मैं एक अभागा प्राणी हूं।

राधा ने अपनी दोनों दीन बांहें चरन के गले में डाल दीं और रोकर कहा—यह क्या कहते हो? अपने सौभाग्य की इन सुनहली मुस्कराती जोड़ी को देखो। परमात्मा से प्रार्थना है वह इन्हें चिरजीवी करे और अब मेरे लिए चिन्ता करना छोड़ दो।

वह बेढ़ी रात थी और सरदी का भयानक मौसम। हाथ पैर बर्फ हो रहे थे। चरन की गोद में कला मुरझाई पड़ी थी। राम ही एक दूसरे

बिस्तर पर अबोध बालक बेहाल सो रहा था। मामवती बसकर समाप्त प्राय हो चुकी थी। चरन की आंखों से गरम-गरम आंसू की बूंदें बराबर झरझर कर गोद में पड़ी बच्ची के कपड़ों को भिगो रही थीं। रागिनी की निश्चल बाहें स्वामी के गले में पड़ी थीं।

एकाएक मरण का डंका टूट पड़ा। साहु की बड़ी हिचकियां निर्जीव होकर सुन गईं। दीपक का निर्वाण हो गया। चरन ने व्याकुल कंठ से पुकारा—मेरी रानी! मेरी स्वामिनी!—प्रिये! रानी! तुम क्यों रूठ रही हो? एक बार, केवल एकबार अपनी बाहें इस गले में और डाल दो। आह! यह क्या कैसा कठोर निष्ठुर है! महाप्रलय की रात मालूम पड़ती है। दीपक, आलोक, उजाला प्रकाश! कहां हो मालूम करो! एक शिशु—केवल एक मालक!

[दो]

चरन का नाम जिस ज्योतिषी ने विचारा था उसकी आंखों की दृष्टि चाहे कैसी रही हो, पर उसकी विद्या-बुद्धि में कसर न थी। उसने केवल नाम के तीन आक्षरिक अक्षरों में कैसे उसके जीवन का सारा भविष्य अंकित कर दिया था। चरन सचमुच बचपन से चरणों की तरह दुखी, उपेक्षित और अनादृत रहा।

कहने को वकील का लड़का था। घर में खाने की कमी न थी; पर विशेष सुविधा भी न थी। मां जो प्यार करती और कर सकती थी वह घर की स्वामिनी होकर भी दासी—नहीं भिखारिणी थी। माम्यहीन चरन

उसी अभागी मां के उदर से जन्मा था।

मां का नाम ही सिर्फ बसन्ती था [illegible] न उसमें बसन्त का सा मादक रूप था न वसी बहार। जैसी रूपहीन वह थी वैसा ही था उसका भाग्य। स्वामी ने कभी उसे प्यार नहीं किया था। वह रूप वञ्चिता रस-वञ्चिता प्यार और स्नेह वञ्चिता अबला थी दुखी निराश्रित और निरव लम्ब। लेकिन उसकी विरूप आकृति और मद्दे वश विन्यास में छिपा था अनन्य प्रेम का महासागर जिसे कभी किसी ने पूछा न था, जिसका कोई ग्राहक न था।

गँवार और कुरूप स्त्री सुशिक्षित पुरुष की गृहिणी बने इससे अधिक अपराध और क्या हो सकता है? शासन-विधान में इसके लिए चाहे कोई धारा न हो पर मन निकले हुये वकील की प्रतिभा कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेती है। चरन के पिता ने अपनी वकालत की कारगुजारी पहले पहल अपने घर से ही आरम्भ की। मनोविज्ञान पढ़ा था। उसकी सहायता से ही आरम्भ किया। दिन में चार चार बार स्त्री की पेशी होने लगी। कभी दाल में नमक की शिकायत कभी पान में चूने के लिए पेशी कभी बिस्तर पर मच्छरों के लिए मार्सेना। आरोप बढ़ते ही जाते थे। पर जब फैसले का मौका आता तो हाथ रुक जाता। हिन्दूला के विधाताओं की बुद्धि की बलिहारी! उन्होंने तलाक का कहीं जिक्र ही न किया था!—न सही पर इससे क्या घर के काम-काज रुक जाते हैं।

वकील साहब को बनाने में विधाता ने जैसी बुद्धिमत्ता से काम लिया था वैसे ही उसने बसन्ती को अन्तर से अधिक सरलता और कुम्पता

देकर अपनी बुद्धि का भी डंका पीट दिया था। अनेक सरल के बाद और नई नई अनुविधाएं भी उसकी सत्ता भंग न होती। अपने करुण जीवन का उसे भान ही न था। उसमें न अभिमान था न गर्व। स्वामी कहते खड़ी हो जा खड़ी हो जाती वे हुक्म देते बैठ जा, तो बैठ जाती।

उसके इस भाव से वकील साहब मन ही मन जल भुन कर कहते—बड़ी मूर्खा है।

वह भी चुपचाप सिर झुकाकर स्वीकार कर लेती। उसने कभी एक क्षण के लिए भी स्वामी के कथन पर अविश्वास न किया था। वह सचमुच अपने आपको वैसा ही समझती थी, वैसा वकील साहब क्रोध में आकर कह डालते।

उसका कोई काम स्वामी को पसंद नहीं आता, पर घर के प्रायः सभी काम करने उसी को पड़ते थे और हर काम के साथ सुननी पड़ती थी तरह तरह की फटकार। ऐसी स्त्री के स्वामी बनकर वकील साहब भी परेशान थे। उनका महत्वपूर्ण जीवन स्त्री की बक झक और दुश्चिन्ता में जाता था। वैवाहिक जीवन की ऐसी मनोहर कल्पनाएं कर रक्खी थीं उन सब पर तुषार-कुठार और मूर्खा बसन्ती न जाने कब दिया था। कचहरी से जब लौटकर आते तो कभी वह द्वार के पास उत्सुकता से प्रतीक्षा नहीं करती होती। कभी-कभी रूप सौन्दर्य की बात विधाता का अभिशाप मानकर भूल भी जाना चाहते थे पर बसन्ती की फूहड़ काय अज्ञानी पद पद पर उसका स्मरण दिला देती थी। जब वे चाहते कि वह बाहर के सभी दुःख आमूलग्न ला देने के लिए भगवान से उस समय बसन्ती बड़ी स्वस्थता से

चूल्हा फूँकने में लगी होती। जब वे चाहते कि वह उनकी पुस्तकों में से किसी सरस उपन्यास को लेकर पढ़ने बैठ जाय और उसके विषय की आलोचना करने के लिये उन्हें कचहरी जाते समय थोड़ी देर रुकने के लिए अनुरोध करे, उस समय वह उनकी नहाई हुई जली झोंझी होती या बाबा आदम की पुरानी रामायण की पोथी लेकर ध्यान-मग्न होती। कभी प्रेम पत्र लिखना न जानती थी। कभी हाव भाव दर्शाना न जानती थी। न 'प्रियतम' कहकर कभी प्रेम निवेदन करती थी। इस शुष्कता और नीरसता ने उसके रूप को और भी स्वामी की नजरों में मांझा बना दिया था।

[तीन]

यह विषय अब तक विवाद ग्रस्त है कि पाँच साल के बालक चरन को छोड़कर बसन्ती स्वयं कहीं चली गई या वकील साहब ने ही किसी तरह उससे पीछा छुड़ा लिया। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि बेचारा चरन बिना माँ का रह गया।

बसन्ती का कहीं पता न लगा। लेकिन स्त्रियों का पता न लगने से पुरुषों के जीवन में कोई अभाव आजाता हो यह बात नहीं तथापि वकील साहब ने मन ही मन उसे बहुत अनुभव किया। क्योंकि बसन्ती को न सही तो वे चरन को तो प्यार करते ही थे। बच्चे की ममता उन्हें उसकी याद दिलाये बिना न रहती जिसके लिये उनका जीवन सदा पूजा के भाव से भरा था।

बच्चे के लालन-पालन के लिये हो, चाहे अपने आराम के लिये, उन्होंने शीघ्र ही दूसरा विवाह कर लिया। नई आई सुन्दरी पढ़ी-लिखी अप-टू-डेट। उसने वकील साहब के कटुए जीवन में अपूर्व मिठास पैदा कर दी। पर बेचारे चरन की दशा में कुछ भी परिवर्तन न हुआ। वह उसी तरह पिता के निष्फल प्यार और माता के उपेक्षित प्यार में अपने बचपन के दिन व्यतीत करता रहा।

सातवीं साल में वह स्कूल में पढ़ने गया। उसके भोले चेहरे और शिष्ट संभाषण में एक जादू था, जो सब पर असर डालता था। पिता उसके ऊपर कृपालु थे। विमाता का भाव भी कोमल हो चला था। सौभाग्य के सुनहले स्वप्न आने में देर न थी। वह मनही मन प्रफुल्लित हो रहा था। यकायक विमाता का भाव बदल गया। वह फिर चरन से खिंची रहने लगी। पर उसकी समझ में कुछ न आया।

उसकी पैतृक सम्पत्ति चाहे कितनी ही थोड़ी क्यों न थी; पर वह अब तक उसका अकेला उत्तराधिकारी था। अब उसका वह अधिकार भी बँट जानेवाला था। यही नहीं धन-सम्पत्ति के अतिरिक्त पिता और विमाता का प्रेम भी उस पर न रहा। न जाने कितने जन्मों की शत्रुता का बदला लेने के लिये विमाता के गर्भ से एक बालक ने भाई बनकर जन्म लिया। भाई का स्नेह मधुर ध्यान लेकर एक राहु उदय हुआ जिसने अभागे चरन के समस्त सुखों का ग्रास कर लिया।

[चार]

चरन स्कूल में पढ़ता था। उसकी विमाता सुन्दरी और पढ़ी-

लिखी थी। वकील साहब ने इस शादी में अपनी सुरुचि का पूरा उपयोग किया था। स्त्री चुनने में उन्होंने बिलकुल नये ढंग से काम लिया था। पर्दे से गुण दोषों की कभी-कभी परख नहीं हो पाती। इसलिए उन्होंने लड़की स्वयं देखकर पसन्द की थी। इसीसे धर्मसमाजी होने पर भी आर्यसमाज के सिद्धान्तों में श्रद्धा रखनेवाली स्त्री से उनका प्रेम-बन्धन हो गया पर दोनों के लचीले स्वभाव ने इस मतान्तर की खाई को दुर्लंघ्य न होने दिया। स्त्री समाज के जलसों में बेरोक—टोक जाती थी। स्वामी अपने सम्प्रदाय विश्वास और धार्मिक विचारों के अनुसार काम करते थे। एक समय था जब बसन्ती को रामायण पढ़ना उन्हें अखरा जाता था, पर उसके अहदख हो जाने के बाद से उन्हें रामायण की ओर विशेष रुचि हो गई थी। न जाने क्यों पर फिर भी स्त्री पुरुषों में पूरी-पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता थी। नवयुग की नई रोशनी में पहरुषी का कायाकल्प हो गया था।

स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के भी अवस्था भेद से रूप बदला करते हैं। जबतक किसी आर्थिक चिन्ता का सामना नहीं पड़ा तबतक मजे में चलता गया, पर जब श्रीमती के लिये ताँगे के पैसे एक व्यर्थ का बोझ प्रतीत होने लगे तो धार्मिक मतान्तर का कुत्सित रूप कुछ कुछ स्पष्ट हो चला।

किसी सम्प्रदाय की हो, स्त्रियों में धार्मिक विश्वास का आधिक्य होता ही है। वे जिस बात को मानती हैं अन्तःकरण से मानती हैं। वकील साहब के इशारा करने पर भी श्रीमती ने समाज में जाना नहीं छोड़ा। बल्कि और नियमित हो गईं। पति-पत्नी की इस पारस्परिक खींचातानी आर्थिक समस्या और उलझ गई। विश्व के आदिकाल से जो होता

है अन्त में वही हुआ। रमणी का हट रहा पुरुष का कुछ टकराने पड़। पूर्ववत् विराग का तागा अनिता का समाज मन्दिर का अर ल जाता रहा। हा यहा मा अन्तर यह अवश्य हुआ कि बारह रुपया महीने का एक नौकर छुड़ा दिया गया और चरण जा स्कूल में जाकर अपना समय और पिता। अन्त इस मासिक बरबाद करता या उसकी जगह घर का काम काज देखने लगा।

बर्कील साहब ने कुछ विराग तो किया इसलिए यह नहीं कह सकते कि उन्होंने इस दमन नहीं किया। चरण चरण के स्थान पर आ गया और चरणों के स्थान पर कार्जन इन में ही अध्ययन का आरम्भ होता है।

जहां चरन के मन का इतना लड़ा बनाया था वहीं विधवा ने बचपन में ही उस कुशाग्र बुद्धि देकर बड़ी समझदारी का काम किया था। पढ़ना लिखना छूटकर घर की रहन करते करते ही वह अक्सर अपने जीवन की आलोचना कर लेता था। वह मनही मन जानता था कि विमाता के जिस वस्त्र का वह गद्दे में लेकर घुमकाता और माथे पर चढ़ाकर टहलाता है वह गद्दे बड़ा होने पर इतना कुन्दन न हुआ कि उसे घर से निकाल दे तो भी बड़े भाई का पद तो कदापि न दे सकेगा। अपने पिता के घर में हर समय हर बात में, पराधीन अनुभव कर उसके जीवन का रसमय हुआ जाता था।

लड़कों में बचपन की जो उमंगें होती हैं जिस चाञ्चल्य और वाचालता से उनका जीवन सुहावना बना रहता है, वे उसमें कहां से

आती। उसने न कभी साड़ पाया था, न दुलार। एक बार भी कभी किसी बात के लिए रूठकर उसने माँ बाप को कुटनों के बल न झुका पाया था। कभी इठलाकर चलने की क्षमता उसमें न आई थी पर वही दुर्बल-कोमल चरन पुरुषार्थ का पुतला बन गया। ज्योंही उसने सुना कि उसकी माँ हरिद्वार में है वहीं गंगा-तट पर वह फूल बेचती है त्योंही वह पिता के घर से बाहर हो गया। हरिद्वार कहाँ, किधर, कितने मील है, यह सोचने का कष्ट उसने नहीं उठाया।

जिसके पास खाने को एक पैसा नहीं, ओढ़ने-पहनने को कपड़े नहीं वह छोटा-सा बालक इतने मील का सफर करने के बाद, जिसमें वह फेलकर हरिद्वार पहुँचा होगा इसकी यथावत् कल्पना सब कोई नहीं कर सकते। केवल माँ का प्यार उसे वहाँ खींच ले गया। तकलीफों को उसने मार्ग के फूल समझा।

उसने हरिद्वार की गली गली छान डाली। जितनी मालिनें गंगा तट पर फूल बेचती थीं उन सभी को अपनी करुण कहानी से एक-एक बार उसने रुला दिया पर माँ का कहीं पता न चला।

माँ को न पाकर वह निराश था। अब चारों दिशाएँ उसके लिए समान थीं। हरिद्वार की अनाकीर्ण गलियाँ उसे सूनी प्रतीत होती थीं। एक दिन वह गाड़ी में सवार हो लिया। गाड़ी कहाँ किधर जायगी इस बुद्धिचिन्ता में पड़ना उसने उचित नहीं समझा।

मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। भूख-प्यास से मुँह सूख रहा था। गाड़ी वायुवेग से जा रही थी। उसी चलती गाड़ी में एक डाँव-डाँवी बाबू

चढ़ आया। सब लोग उस अपना अपना टिकट दिखाने लगे। चरन का सिर चक्कर खाने लगा। जब बाबू ने उसकी ओर फिरकर टिकट मांगा तो उसके मुँह के अन्दर जीभ अटक गई और वह सिसक-सिसक कर रोने लगा।

एक महाशय बड़ी देर से चरन की दशा पर मन ही मन तरस खा रहे थे। उन्होंने बच्चे को विपत्ति में पड़ा देखकर कहा—यह लड़का मेरे साथ है। इसके टिकट के दाम मुझसे लीजिये।

जेब से मनीबेग निकाल कर रुपये गिन दिये और रसीद लेली। चरन मन ही मन बहुत लज्जित और संकुचित होकर आंसू पोंछने लगा। थोड़ी देर में उन महाशय ने कहा—लो बच्चे! यह रसीद। बनारस तक का टिकट है। तुम कहां उतरोगे?

चरन ने कांपते हुए हाथों से रसीद लेली पर उनकी बात का कुछ उत्तर न दे सका। उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारा घर कहां है?

उत्तर में चरन ने रो दिया।

[पांच]

सुन्दरलाल को मालूम हुआ तो वे चरन को अपने साथ ही ले आये। एक अपरिचित घर में अनायास आकर चरन ने माँ-बाप दोनों को पा लिया। जिस अभाव की ज्वाला से उसका जीवन जल रहा था, वह न रहा। सुन्दरलाल सचमुच उसे लड़के की तरह रखने लगे। उनकी गृहिणी मां की तरह उसका खबर लेने लगी। बालों और पुरुषों

से भी अधिक सरस और सौन्दर्यमय बनाने लगी उस दम्पति को सलोनी हिन्दुस्तानी कन्या राधिका।

सुन्दरलाल बहुत मामूली हैसियत के आदमी थे। उनके पास कोई ऐसा आवदाद न थी जो वे किसी को दर्शाकर कर सकते। उनका हृदय बड़ा विशाल था। उन्होंने किसी तरह चरन को बहादुर एन्ट्रेन्स पास करा दिया। किन्तु उसका नतीजा भी न निकलने पाया कि वे अचानक स्वर्गवासी हो गये। उनके थोड़े दिन बाद ही उनकी धर्मपत्नी भी चल बसीं; किन्तु अन्त समय वे अपने स्वामी की अन्तिम अभिलाषा पूरी कर गईं। चारपाई पर लेटे-लेटे ही उन्होंने चरन और राधा का आपसे सामने ही मंगनी किरवा दी। वह विवाह भी अनोखा था। उसमें बाजे नहीं बजे; उत्सव नहीं हुआ। चरन भी रोता था राधा भी रोती थी, और सरस्वती राधा को स्नेहमयी माँ, मृत्यु-शैया पर पड़े पति कन्यादान कर रही थी। माँगों के कुछ घंटा बाद उनकी अर्थी निकली। मालूम पड़ता है इसी दर्शाने के लिए उनके प्राण शरीर में अटक रहे थे।

[८]

जिस स्नेह और सौजन्य से जिस आशा और अभिलाषा से सरस्वती और सुन्दरलाल ने अपनी स्नेहमयी दुहिता चरन को दिलारी चरन को अर्पित की थी जीवन भर पूरी तरह से उसका आदर और मान करने में कुछ उठा नहीं रखा था उनकी उस अमूल्य विभूति का चरन ने भी सदा अपनी पलकों पर ही रखने में गौरव समझा।

उसने जी तोड़कर धनराशि इकट्ठी की। मकान बनवाया। अपनी हृदयेश्वरी की एक-एक इच्छा को पूर्ण करने का सतत प्रयत्न किया। राधा सचमुच अपने प्रेम और लावण्य के कारण उसे उतनी प्यारी न थी जितनी सास ससुर की स्मृति के कारण। दुर्भाग्य आज जब वह नहीं है तो उसका संसार सूना हो गया है। कला और कलाप उसके उस अभाव की पूर्ति नहीं कर पाते। गत जीवन की एक-एक स्मृति उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगा रही है।

खुशी में जब समय नहीं कटता चाहिए, तब वह चुपचाप खिसक जाता है इतने चुपके से कि पता भी नहीं चलता पर दुख में एक एक पल कटते कटते दुखिया की हजार बार मृत्यु हो चुकती है। ग्रीष्म उदासी से भी पसीना उठता है। स्मृतियों से आँखें धुल जाती हैं। आज राधा की नहीं चरन के समस्त सुखों की मृत्यु हो गई है और अब शायद इस जीवन में फिर कभी उसमें प्राण-रस प्रवाहित नहीं होगा।

विरोधी

उत्तर दक्षिण दिशाओं में जिस विराट-भाव की सूचना है, आकाश पाताल के बीच जिस अपरिसीम अन्तर का विधान है, ठीक उसी भाव का हम दोनों के जीवन में योग था। मैं उसके हर काम को घृणा ईर्ष्या और द्वेष की दृष्टि से देखता। वह भी मेरी बात बात पर जली-भुनी आंखों से अग्निवर्षा करने में ही सन्तोष पाता।

यह क्यों हुआ कैसे हुआ?—आदि बातों का उत्तर पूछो तो कुछ भी नहीं। मैंने उसे पहली बार स्कूल में देखा, लड़कों से सुना—वह पढ़ने आया है। किसी ने उसका नाम लिया—घनानन्द।

मेरे मन में न जाने क्यों देखते ही उसके प्रति अनन्त घृणा का समुद्र उमड़ पड़ा। मैंने अपने तमाम उपास्य देवों के द्वार खटखटा डाले। सबसे यही, केवल यही प्रार्थना की—हे देव! हे रघुनन्दन! इस दस्यु का यहां से स्थानान्तरित कर सको तो माता वसुन्धरा का भार बहुत कुछ हल्का हो जाय।

घनानन्द के नाम का प्रत्येक अक्षर मेरे कानों में बम की तरह बजने लगा। मैं उसके सौम्य नाम का सह न सका। मैंने उसमें थोड़ा परिवर्तन कर देना आवश्यक समझा। मैंने उसका नाम घृणानन्द रख

दिया। पृथ्वीनन्द के प्रति मेरी घृणा और ईर्ष्या और भी प्रबल हो उठी। मुझे मालूम हुआ कि वह स्कूल में भर्ती हो गया है। वहीं क्यों वह मेरे दर्जे ही में, मेरे ही सेक्शन में लिया गया है। मैं उसे जितना ही दूर चाहता था वह उतना ही मेरे पास आकर लिपट गया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि सांप आस्तीन में घुस आया।

खैर इतनी हुई कि मेरे पास लाली खाट होने पर भी मास्टर ने उसे मुझसे दूर ही रक्खा। मैंने बूढ़े मास्टर की कांपती हुई अक्ल को सराहा दिया।

उसने इधर से उधर दृष्टि दौड़ाकर कुछ देर में कमरे की सारी मूर्तियों को परख लिया। मुझे भी देखा—सांप की तरह फुफकारते हुए। मैंने समझा उसने मुझे पहचान लिया। बात भी सच थी।

मास्टर चले गये। खाने-पीने की छुट्टी हुई। सभी लड़कों से, जैसा हमका गटबन्धन हो गया। इतनी बड़ी ऐसा हेल-मेल। मरी भी गर्म लड़ रही थी; लेकिन एक कान और एक कान उसी की ओर लगे थे और शायद उसके मेरी ओर।

मैं उसे अपनी ओर फुफकारते हुए समझता रहा था वह मुझे फुफुराते हुए।

उस दिन यहीं तक हुआ। पृथ्वीनन्द छुट्टी के बाद घृणा और विद्वेष की आग जलाकर अपने घर चला गया। मैं अपने यहां चला आया और उसे सुरक्षित रखने का जतन करने लगा।

दूसरे दिन मन्त्राच्छादित चिनगारी उद्भ्रान्तरूप में प्रकट हुई। मैं

विरोधी

उत्तर दक्षिण दिशाओं में जिस विरोध-भाव की कल्पना है, आकाश पाताल के बीच जिस अपरिसीम अन्तर का विधान है ठीक उसी भाव का हम दोनों के जीवन में योग था। मैं उसके हर काम को घृणा ईर्ष्या और द्वेष की दृष्टि से देखता। वह भी मेरी बात-बात पर चली-भुनी बातों से अग्निवर्षा करने में ही सन्तोष पाता।

वह क्यों हुआ, कैसे हुआ ?—आदि बातों का उत्तर पूछा तो कुछ भी नहीं। मैंने उसे पहली बार स्कूल में देखा, लड़कों से सुना—वह पढ़ने आया है। किसी ने उसका नाम लिया—धनानन्द।

मेरे मन में न जाने क्यों देखते ही उसके प्रति अनन्त घृणा का समुद्र उमड़ पड़ा। मैंने अपने तमाम उपास्य देवों के द्वार खटखटा डाले। सबसे यही, केवल यही प्रार्थना की—हे देव! हे शत्रुदमन! इस वस्तु को यहां से स्थानान्तरित कर दो तो माता वसुन्धरा का भार बहुत कुछ हल्का हो जाय।

धनानन्द के नाम का प्रत्येक अक्षर मेरे कानों में घन की तरह बजने लगा। मैं उसके गोप नाम का सह न सका। मैंने उसमें थोड़ा परिवर्तन कर देना आवश्यक समझा। मैंने उसका नाम पुष्पानन्द रख

दिया। पृथ्वानन्द के प्रति मेरी घृणा और ईर्ष्या और भी प्रबल हो उठी। मुझे मालूम हुआ कि वह स्कूल में भर्ती हो गया है। वही क्यों वह मेरे दर्जे ही में, मेरे ही सेक्शन में लिया गया है। मैं उसे जितना ही दूर चाहता था वह उतना ही मेरे पास आकर लिपट गया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि साँप आस्तीन में घुस आया।

खैर इतनी हुई कि मेरे पास खाली सीट होने पर भी मास्टर ने उसे मुझसे दूर ही रक्खा। मैंने बूढ़े मास्टर की काँपती हुई अक्ल को कोसा दिया।

उसने इधर से उधर दृष्टि दौड़ाकर कुछ देर में कमरे की सारी मूर्तियों को परख लिया। मुझे भी देखा—साँप की तरह फुफकारते हुए। मैंने समझा, उसने मुझे पहचान लिया। बात भी सच थी।

मास्टर चले गये। खाने-पीने की छुट्टी हुई। सभी लड़कों से मैंने उसका गठबन्धन हो गया। इतनी जल्दी ऐसा मेल-जोल! मेरी भी गप्पें लड़ रही थीं। लेकिन एक आँख और एक कान उसी की ओर लगे थे और शायद उसके मेरी ओर।

मैं उसे अपनी ओर फुफकारते हुए समझता रहा था, वह मुझे फुसफुसाते हुए।

उस दिन यहीं तक हुआ। पृथ्वानन्द छुट्टी के बाद घृणा और विद्वेष की आग जलाकर अपने घर चला गया। मैं अकेले वहाँ चला आया और उसे सुरक्षित रखने का यत्न करने लगा।

दूसरे दिन मन्मान्दाजित चिनगारी ज्वालास्वरूप में प्रकट हुई। मैं

विरोधी

उत्तर-दक्षिण दिशाओं में जिस विरोध-भाव की सूचना है, आकाश पाताल के बीच जिस अपरिसीम अन्तर का विधान है ठीक उसी भाव का हम दोनों के जीवन में योग था। मैं उसके हर काम को घृणा ईर्ष्या और द्वेष की दृष्टि से देखता। वह भी मेरी बात-बात पर जली-भुनी आँखों से अग्निवर्षा करने में ही सन्तोष पाता।

यह क्यों हुआ, कैसे हुआ ?—आदि बातों का उत्तर पूछो तो कुछ भी नहीं। मैंने उसे पहली बार स्कूल में देखा, लड़कों से सुना—वह पढ़ने आया है। किसी ने उसका नाम लिया—घनानन्द।

मेरे मन में न जाने क्यों देखते ही उसके प्रति अनन्त घृणा का समुद्र उमड़ पड़ा। मैंने अपने तमाम उपास्य देवों के द्वार खटखटा डाले। सबसे यही, केवल यही प्रार्थना की—हे देव! हे अन्तर्यामी! इस दम्भ का यहाँ से लोकान्तरित कर सको तो माता वसुन्धरा का भार बहुत कुछ हल्का हो जाय।

घनानन्द के नाम का प्रत्येक अक्षर मेरे कानों में घन की तरह बजने लगा। मैं उसके सीधे नाम का सह न सका। मैंने उसमें थोड़ा परिवर्तन कर देना आवश्यक समझा। मैंने उसका नाम भृगुनन्द रख

दिया। पुण्यानन्द के प्रति मेरी घृणा और ईर्ष्या और भी प्रबल हो उठी। मुझे मालूम हुआ कि वह स्कूल में भर्ती हो गया है। वही क्यों वह मेरे दर्जे ही में, मेरे ही सेक्शन में लिया गया है। मैं उसे जितना ही दूर चाहता था वह उतना ही मेरे पास आकर लिपट गया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि सांप आस्तीन में घुस आया।

खैर इतनी हुई कि मेरे पास खाली सीट होने पर भी मास्टर ने उसे मुझसे दूर ही रक्खा। मैंने बूढ़े मास्टर की कांपती हुई अक्ल को धन्यवाद दिया।

उसने इधर से उधर दृष्टि दौड़ाकर कुछ देर में कमरे की सारी मूर्तियों का परख लिया। मुझे भी देखा—सांप की तरह फुफकारते हुए। मैंने समझा, उसने मुझे पहचान लिया। बात भी सच थी।

मास्टर चले गये। खाने-पीने की छुट्टी हुई। सभी लड़कों से बैठा उसका गठबन्धन हो गया। इतनी जल्दी ऐसा देख-भेल! मरी भी गयें लड़ रही थीं; लेकिन एक आंख और एक कान उसी की ओर लगे थे और शायद उसके मेरी ओर।

मैं उसे अपनी ओर फुफकारते हुए समझता रहा था, वह मुझे गुर्राते हुए।

उस दिन यहीं तक हुआ। पुण्यानन्द छुट्टी के बाद पृथा और विद्वेष की आग जलाकर अपने घर चला गया। मैं अपने यहां चला आया और उसे सुरक्षित रखने का यत्न करने लगा।

दूसरे दिन मस्याच्छादित चिनगारी ज्वालारूप में प्रकट हुई। मैं

पढ़ रहा था। मास्टर ने कोई शब्द पूछ लिया। मुझे न आया। मैं चुपचाप खड़ा था। पुष्पानन्द ने झट से हाथ ऊँचा कर दिया। मेरे शरीर में एक सिरे से दूसरे सिरे तक कड़वा विष भर गया। मैंने कड़ी से कड़ी नजर से उसकी ओर देखा।

शाम को खेल हुआ। उसमें भी हम दोनों का स्पष्ट विरोध-भाव देख पड़ा। बात-बात में विरोध था—कड़ा तीव्र और अनुचित। वह मेरे हरएक प्रस्ताव को उलटने में कसर नहीं छोड़ता। मैं भी उसकी कोई बात लगने नहीं देता।

मेरे जीवन का सारा रस विष हो गया था और शायद उसका भी।

[दो]

मेरे दर्जे के दो संस्थान थे। कुछ उत्तर लड़के होंगे। मैं सबसे तेज था। कभी किसी ने मुझे किसी विषय में परास्त नहीं कर पाया था। मुझे और मेरे मास्टर वर्ग को मेरी प्रतिभा और कुशाग्रबुद्धि का गर्व था। अभी तक वह गर्व हिमाचल की तरह दृढ़ और अचल चला आ रहा था। पुष्पानन्द ने आकर उसे भी हिला दिया। ऐसा दृढ़, ऐसा मेहनती और ऐसा खिलाड़ी कोई लड़का शायद मास्टरों की याद में भी भर्ती न हुआ था। मेरी सर्वतोमुखी प्रतिभा जब कई बार उसके सामने दुष्टिटत हुई तो मेरी आँखें खुलीं। मास्टरों की उसके ऊपर कृपा बढ़ने लगी। मेरा उसके प्रति रोष उद्वेलित होने लगा।

इतना तेज होने पर भी किताबों में जी न लगाने की मैंने कसम खाई थी। जरूरत भी नहीं थी पूछने की भी नहीं थी। कुछ लापरवाही थी, कुछ बचपन था—और कुछ ये स्वप्न कुछ आनन्द और विनोद। ज्ञान-संचय के लिए नहीं, पृथ्वानन्द के लिये समस्त विश्व की पूजा उत्पादन करने की खातिर मैं अपनी समस्त शक्ति से पढ़ाई में लग गया।

घर के लोगों का लाजुक था। भाई को मेरे न पढ़ने की सदा शिकायत थी वे प्रसन्न हो गये। मा को मेरी तन्दुरुस्ती की चिन्ता सताने लगी। बार-बार बाबूजी के सामने मेरी लगन की चर्चा चलाकर बात को अच्छी तरह प्रसिद्ध कर दिया। केवल नई मामी ने मेरे इस नये कार्यक्रम का पसन्द नहीं किया। जरा हँसने बोलने का सुयोग था, वह भी गया।

मैं अपने काम में लगा रहा। भूगोल विज्ञान और गणित इन विषयों पर विशेष ज्ञान चढ़ाना था। शेष विषयों में अभी मैंने पृथ्वानन्द का अधिकार नहीं माना था लेकिन फिर भी मेहनत हरएक में करता रहा।

शहर में प्रसिद्ध रामलीला का सर्वेश आया। बाबूजी ने कहा, मां ने कहा पर मैं नहीं गया। मामी का भी अनुराग नहीं माना। भाई और बहनों की रुपया-पैसा लाकर देख आई। उस समय मैं विज्ञान में तल्लीन था। हमारी इम्तहान का दीन दिन में भी कम समय रह गया था।

दूसरे दिन सुना पृथ्वानन्द सर्कस देख आया है। वह कक्षा में खूब लम्बी-चौड़ी हांक रहा था। इन दिनों ऐसे खेलों में शरीक होना भी

छोड़ दिया था लेकिन कृष्णानन्द शायद बराबर भाग लेता था। उसकी वही ही दिलचस्पी थी, वही रफ्तार थी।

मैं कहता था—ठीक है लेकिन मतीजे के बाद मालूम पड़ा, कि अवश्य ही वह भी मेरे लिए यही कहता रहा होगा। मेरी उसकी भाषाओं में भेद था—उसकी उर्दू थी मेरी हिन्दी। विज्ञान भूगोल और गणित में उसके नम्बर अधिक आये। लेकिन डोमेस्ट मेरा बढ़ गया। गौरव रह गया, ऐसा मैंने समझ लिया। हिन्दी के पंडितजी को धन्यवाद दिया।

गणित और विज्ञान बड़ाखी मास्टर पढ़ाते थे और भूगोल एक अमेरिकन। दोनों ने मुझसे पूछा—क्यों जी तुमको क्या हो गया था।

'मुझको तो कुछ भी नहीं हो गया था। पहले से हर एक पर्चा अच्छा ही किया था। तुम कृष्णानन्द इससे भी अच्छा करोगे इसका मजा मुझे क्या पता था। यही सोचकर मैं चुप रह गया।

[तंत्र]

जीवन में मेरी टक्कर उसे छोड़कर और किसी से नहीं हुई। इसका कारण पूर्वजन्म के किसी संस्कार के सिवा और क्या हो सकता है। जो लोग इस विश्वास के पालन नहीं, वे कोई दूसरा कारण भी समझ सकते हैं।

हम दोनों ने हाई स्कूल साथ-साथ पास किया। जो डिवीजन मैंने पाया, वही उसे पाने का क्या अधिकार था? लेकिन उसने वही पाया। स्कूल

में साथ साथ कॉलेज में साथ-साथ, सभा-सभाओं में साथ साथ लेकिन दोनों एक दूसरे के कट्टर विरोधी और प्रबल शत्रु। आर्यकुमार सभा फुटबाल, हाकी के मैदान, उत्सवों के रंगमंच और डिबेटिंग-क्लब हम दोनों के हौसले निकालने के स्थल थे। कहीं मार-ताड़कर, कहीं गालियों की बौछार कर और कहीं प्रतिभा और विद्वत्ता से एक दूसरे का परास्त कर नीचा दिखाना चाहते थे। ड्रामा में शाइलाक बनकर मैं उपमुख ही एन्टोनियो (पुष्पानन्द) का एक पौंड मांस काट लेने की पुलकित चेष्टा से हृदयस्थ उठता। पोर्शिया का अभिनय और तर्कपटुता उतनी हृदयहारिणी न होती, तो मैं नाटक को सत्य घटना में परिणत कर देता।

पोर्शिया पाठकों के लिए नई चीज नहीं है।

पहले श्यामा और कृष्णा लड़कियों का जिक्र हुआ है। दोनों मेरे पड़ोस में पैदा हुई हैं—बड़ी हुई हैं। अब दोनों ही कालेज में पढ़ती हैं। श्यामा उद्दा है और कृष्णा अनुद्दा। मैं अभी से कृष्णा पर अपना एक विशेष अधिकार मान बैठा हूँ। कृष्णा का पोर्शिया का अभिनय विख्यात है।

दोनों बहनों के सीलिया और राजालिड के अभिनय भी उत्तम हैं। पर मुझे कृष्णा का राजालिड बनना उतना नहीं भाता। क्योंकि तब पुष्पानन्द ऑरलैण्डो बनकर रस में विष घोल देता है। उस समय जी चाहता है उठकर प्रलय मचा दूं। कृष्णा मेरे मुंह से तारीफ के दो शब्दों के लिए कई बार सिर फोड़ चुकी है। पर मैंने परवाह नहीं की। वह मेरे हठ को जानती है। इसीसे चुप रहती है।

बरसातों की मेरे में कुछ हाल की इन्तजारी थी। वह भी मैं हो

गया। तब या शीघ्र ही कृष्णा मुझे मिल जायगी। यकायक पाँसा पलट गया। मुझ पृथ्वानन्द शुरू से मेरे लक्ष्य पर निशाना मारने का अभ्यास कर रहा था लेकिन वह इतना बढ़ जायगा यह भरोसा न था। श्यामा के पति उसके दूरस्थ संबन्धी थे। बस, उन्हीं के जरिये वह बाजी मार गया। कृष्णा उसके लिए, सुना, रुक गई। शीघ्र ही पैंतालीस दिन के अन्दर बड़ी धूम-धाम से ब्याह हो गया। कृष्णा ने मुझे भी निमन्त्रण दिया था पर मैं जाता क्या रोने के लिए? ऐसा घाव कभी न था। अभिलाषाएँ इच्छाएँ और कामनाएँ सभी मृत हो गईं। लेकिन पृथ्वानन्द की वह विजय चुनौती थी। मैं सब कुछ सहन कर सकता था लेकिन चुनौती नहीं।

कृष्णा की पराधीन और चंचल मनोवृत्ति ने मुझे बहुत प्रभावित किया। मैंने थोड़े-से अन्तर्द्वन्द्व के उपरान्त चिरकुमार रहने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उस समय मुझे प्रतीत हुआ कि मैंने पृथ्वानन्द की विजय पर भी विजय पा ली है। इस तरह सहज ही शायद मेरा घाव पुर गया।

[चार]

ऐसी भीषण प्रतिज्ञा कर लेने के बाद मुझे लौकिक या वैभव की परवाह नहीं होनी चाहिए थी पर ऐसा कहाँ हुआ। दूसरे परिश्रम दूनी तेजी और चौगुने साहस के साथ मैं एम० ए०, एल-एल० बी० करने में लग गया। मुझे तो अपने चिर-शत्रु से अब अच्छी तरह बदला लेना था। वह भी अभी तक मेरे कदम-से-कदम मिलाकर चला आ रहा था।

कृष्णा को पाकर उसका भाग्य चमक गया था पर मेरा भाग्य उसे खोकर एक अपूर्व प्रकाश से देदीप्यमान होनेवाला था। दोनों ने एक ही हॉल (कमरे) में बैठकर इम्तहान के पर्चे किये लेकिन दोनों की विचारधाराएँ विपरीत दिशाओं की ओर कल कल करती हुई तुमुल रव से बही चली जा रही थीं। मुझे पक्की खबर थी, उसकी पढ़ाई की इतिश्री वहीं थी। उसके पैरों में सुनहला बन्धन पड़ा था। वह पालतू कबूतर था। समस्त का छोड़कर शून्य-लोक गगन में अबाध विचरने की उसे स्वतन्त्रता न थी। मैं था निर्बन्ध स्वाधीन और स्वच्छन्दगामी। उन्मुक्त विशाल विराट जगत् मेरी क्रीड़ास्थली था। मुझे रोकनेवाला कोई न था। मेरे ऊपर किसी का अंकुश न था। उसके संकुचित और सीमा-बद्ध अस्तित्व का अपने अनन्त असीम विकास के सामने मनस्तल प्रतीत करके मेरा मन अपूर्व आह्लाद से आलोड़ित हो रहा था। वह शुभ दिन किस मुहूर्त में आये, बस इसी की आतुर प्रतीक्षा में मेरी घड़ियाँ बीत रही थीं।

दोनों ने साथ-साथ एल-एल० बी० प्रथम श्रेणी में पास किया। यहाँ तक दोनों राहुओं का स्वर एक ही तार में बोल रहा था। अब पार्थक्य होने में देर न थी। शीघ्र ही एक विभाजक रेखा दोनों के उद्देश्य, दोनों के जीवन के राजमार्ग मेरे लिये से निर्मोक्ष करने जा रही थी।

मेरी विलायत-यात्रा की अभिलाषा घर पर सिर्फ आने लायक दिन रह गये थे। पृथ्वीनन्द का वकालत शुरू करने में शायद उनमें भी कम समय था। मैं पत्र बहाने को तैयार था। पर देर था। वह अदनी का वरण करने जा रहा था पर गीदड़-सा दबा दबा और संकुचित था।

अब तो पंखों की देर थी लेकिन यह क्या ! अकस्मात यह कैसा वज्रपात ! कैसा प्रलय !! पुण्यानन्द नहीं मेरा दुश्मन नहीं, मेरा प्रतिद्वन्द्वी नहीं जीवन में आशा और स्फूर्ति फूँकनेवाला, मेरा सच्चा सहचर नहीं। शून्य हो गया, आश्चर्य हो गया ! वह अचानक चन्द घंटों में नहीं रहा ! नहा-धोकर पूजा करने के लिए कुशासन पर बैठा था। गंगा-जल लेकर आचमन करते ही गिर पड़ा। सेकण्डों में हृदय की गति रुक गई—उसका हार्ट फेल हो गया।

मैं साल साथ-साथ पढ़कर जिसे कभी करीब से अच्छी तरह नहीं देखा था विधाता की विडंबना, आज उसे मैं अपने कन्धे पर ले जा रहा हूँ। मेरी कल्पना मेरी प्यार की हुई अनमोल चीज लुंठित, लज्जित, अचेत होकर धूल के मोल हो गई है !

पुण्यानन्द नहीं रहा। मेरी विलासिता-लता भी रुक गई। मेरा अभ्युदय स्थिर हो गया। जोश और निरलस साहस के सारे स्रोत अवरुद्ध हो गये।

देखता हूँ मेरे दुश्मन और प्रतिस्पर्धी ने अपनी अवांछित उपस्थिति से मेरा थोड़ा कुछ हरण करके मुझे बहुत कुछ दे दिया था और अब आकर तो सभी कुछ ले गया है। इस जीवन में क्या मैं कुछ कर सकूँगा ?—कभी नहीं।

बन्दी

चारों तरफ नीला जल नीले आकाश में मिल गया था। पर्वत श्रेणियों की तरह मुँह उठाकर लहरें उठती और लय हो जाती थीं। वह क्षितिज के उस पार, अनन्तर दूरी तक फैला हुआ महासागर था। उस अजस्र जलराशि के बीच एक छोटा-सा द्वीप चट्टानों के सहारे खड़ा था। लहरों के उद्दण्ड प्रक्रम को विफल करने के लिये ही मानो दृढ़ता उसकी रग-रग में भरी थी।

वहीं तल से टकरानेवाली फेनिल लहरों का पैर से स्पर्श करता हुआ, उन्नत-ललाट एक युवक बैठा था। वह बन्दी था—निर्वासित था।

वायु का झोंका उसके लम्बे बालों को लहराकर चला गया। पानी का रेला आया और छप-से उसके आधे शरीर में लगकर लौट गया। यकायक उसकी आँखें तन गईं। उसने पैर से महासागर को ठुकराकर कहा—इतना गर्व! जानता नहीं तुझे मैंने विशाल साम्राज्य का क्षुद्र बोम्बर बनाना सोचा था। और अब!

उसकी आँखें आप ही आप झुक गईं; क्योंकि वह बन्दी था।

[दो]

उस निर्जन द्वीप में कितनी रातें आईं और गईं। चन्द्रमा

निकला तारे उगे, अंधेरा गहरा हुआ, सूर्य की रोशनी फैली, लेकिन बन्दी के हृदय में वह उत्साह दिखाई न दिया। उसकी नीली आँखों में फिर कभी वह चमक नजर न आई। उसकी स्मृति के सामने सदा निराशा का परदा पड़ा प्रतीत होता था। उसकी हरएक हरकत में हीनता के भाव झलकते थे।

मुक्त गगन में समुद्री पक्षी उड़ता, तो वह चुपचाप बैठकर सिर झुका लेता। जंगली बकरा उछलकर जब पहाड़ी की चोटी पर जाकर तिरछी नजर से उसकी ओर ताकता तो वह चुपचाप अपनी हीनता स्वीकार कर लेता। समुद्र-गर्जन सुनकर उसका कलेजा काँप जाता था। उसके स्वप्नों का महल ढह चुका था। अतीत की हलचल एक धुँधली-सी याद रह गई थी। वर्तमान अंधेरा पड़ा था और भविष्य इतना अनिश्चित और जटिल था कि उसके सुलझाने में मन लगता ही न था।

[तीन]

रात काली थी। समुद्र में तूफान था। लहरें आकाश को छूती थीं। प्रलय — अभी अभी दो मिनट में प्रलय होने वाला था।

बन्दी गहरी निद्रा में गुफा के द्वार पर लेटा हुआ था। उसके नीचे जमीन हिलती थी ऊपर आसमान चढ़कर काट रहा था।

उसने देखा—महासागर को चुनौती देकर वह कूद पड़ा। भटका देकर बेड़ियाँ तोड़ दीं। अनन्त जल-राशि का छाया भर में चीरकर वह किनारे आ खड़ा हुआ। उसके सिर पर राष्ट्रीय-झंडा लहराता था। किले उसके पैरों के पास पड़े थे। असंख्य सेना उसका विगुल सुनने के लिये तैयार थी। उसका हृदय उछल रहा था। तलवार कमर में लटक रही थी। चारों तरफ़ भैरव बज रहा था। उसका जयनाद आकाश में गूँज रहा था।

उसने उस विपुल वाहिनी का अच्छी तरह निरीक्षण किया। एक बार झंडे को प्यार देखा और कहा—दोस्तो! इस झंडे के नीचे एक विशाल साम्राज्य कायम होगा। दुनिया ने कभी जिसका ख्याल नहीं देखा था उतना बड़ा। ये बड़े बड़े महासागर तुम्हारे घर के तालाब होंगे। तुम इनकी लहरों पर शासन करोगे। तुम्हारी आज्ञा के इशारे पर दुनियाँ चलेगी।

समस्त सेना ने झंडे के आगे सिर झुकाया और सम्राट् के जयकार से आकाश हिल उठा।

सेना 'मार्च' करने को तय्यार खड़ी थी। किले की फ़सील पर ताप रखनी थी। उसके छूटने के साथ ही कूच होनेवाला था। भयंकर भयंकर शब्द हुआ। बन्दी उछलकर चट्टान पर खड़ा हो गया। पैरों की बेड़ियाँ बज उठीं। सामने के दरवाज़े टूटकर भयंकर शब्द के साथ गिर पड़े। वह अपनी सेना को आखिरी हुक्म देने के लिये दौड़ा; पर चारों ओर सिवा समुद्र की ऊँची ऊँची लहरों के और कुछ

म था।

वह दिल को मसोसकर बैठ गया; क्योंकि वह कन्दी था।

तारा

भाभी ने जब हँसते हुए मिठाई तलब की, तो मैं उनकी बात नहीं समझ सका, पर—'गजट आने दो तब चाहे जितनी मिठाई ले लेना'—कह कर हैण्डबैग जमीन पर रख दिया और नौकर को बाहर से असबाब लाने का इशारा करके मैं ऊपर कोठे पर जाने लगा। मैंने सुना नहीं, भाभी ने फिर कुछ कहा—पर जब घूमकर देखा तो वे हँस रही थीं और तारा उन्हें रोक रही थी। उस समय तारा के लजीले नेत्रों के भाव को देखकर मुझे विश्वास हो गया कि मैं बात को नहीं समझ सका हूं—पर मैं कोठे पर ही चला गया।

आई सी एस०परीक्षा में सम्मिलित होकर मैं लखनऊ से लौटा था। गत वर्ष एम ए फाइनल का इम्तहान दिया था उसके तेरहवें दिन मेरा गौना हुआ था, तब से तारा केवल एक बार पन्द्रह दिनों के लिए अपने घर गई थी। नहीं तो उसे बराबर यहीं रहना पड़ा था। मैंने भी साल के कई महीने घर पर ही बिताये थे; लेकिन परीक्षा के एक महीने पहले मैं कुछ सोच समझ कर प्रयाग चला गया था। उस दिन मुझे पहली बार

मालूम पड़ा था कि हर महीने में दस दफ़ लटन पर पर भी अज्ञात रूप से मैं तारा के कितने समीप पहुंच गया हूं और उससे अलग रहना अब मेरे जीवन की कितनी बड़ी अपूर्णता है।

लेकिन मैं चला आया क्योंकि इम्तहान के लिए तैयार होना था। यद्यपि मुझे इसकी उतनी चिन्ता नहीं थी जितनी कि मेरे माई साहब को। उन्हीं के सिर समाज गृहस्थी का बोझ था इसीलिये मेरे भविष्य और परिवार की आवश्यकताओं को वे ही अधिक समझते थे। उन्होंने मुझे घर छोड़ देने की आज्ञा दी थी। मैंने इच्छा न रहने पर भी, उनकी आज्ञा का पालन किया।

जब मैं घर से चलने लगा था तारा किवाड़ का पकड़े चुपचाप खड़ी थी। मैंने भी उस समय उससे कुछ कहना उचित नहीं समझा घर द्वार के बाहर पैर रखने से पहले एक बार मेरी आँखें अनायास उस ओर चली गईं। उस कुछ देखा कहा नहीं जा सकता। वह व्यग्रता का भाव। न सजल नेत्र उनका संदेश एक कथा थी जो अक्षरशः मेरे दिल में लिख गई। एक सेकिण्ड में उन आँखों ने जो कुछ कह दिया उसी की मीमांसा गाड़ी में छट-छट मैंने करनी आरम्भ की और निश्चय कर लिया कि अपनी प्यारी तारा को बहुत जल्द अपने साथ रखने का इन्तजाम कर लूंगा। अब उसे इस तरह विपत्ति का बुलाने वाले न होने दूंगा जहां कहीं जाऊंगा वह मेरे साथ जायेगी। वह किशोरी को प्यार करती है यही तो एक झगड़ा है। उसके लिये मैं भावज से झगड़ लूंगा। बस मैं उनका चाचा और तारा उनकी चाची नहीं। बस हमें अपनी मनोवृत्ति पर इतना भी अधिकार

नहीं। मुझे विश्वास है जब मैं मामी से कहूँगा कि वे अपने तीन लड़के लड़कियों को अपने पास रखें और किशोरी को तारा के साथ भेज दें तो वे मान लेंगी। बस फिर तो तारा प्रसन्न ही रहेगी। यही सोचते हुए मैं प्रयाग पहुँच गया। वहाँ भी इम्तिहान के दिन तक मैं तारा को आँखों की वे बड़ी-बड़ी पुतलियाँ न भूल सका। मैं उसका सपना करके बेचैन हो रहा था। मैंने दो तीन पत्र भी लिखे थे पर किसी का उत्तर नहीं मिला। इससे और भी चिंता थी। कभी-कभी मैं सोचता था कि अब की बार तारा सचमुच रूठ गई है। यह अनुमान इसलिए और भी दृढ़ होता जा रहा था कि मैं चलते समय जानबूझकर उससे नहीं बोला था। इम्तहान के दूसरे दिन मुझे तारा का लिफाफा मिला। उसे पढ़कर तसल्ली हुई और गर्व भी हुआ। मैं उसे केवल प्रेम की मूर्ति सरलता का प्रतिरूप और एक अबोध बालिका ही समझता था। जो लज्जा के भार से हरदम दबी जा रही है। लेकिन उसकी व्यवहार कुशलता और भावी-जीवन की महत्वपूर्ण आशा-आशाओं का मुझे उसी दिन पता चला। यदि मैं पहले से जानता तो मेरा पथ और भी प्रशस्त हो जाता। उसने लिखा था—भविष्य जीवन के सच्चे सुख के लिए मेरा मौन रहना ही अच्छा है। सांसारिक उमंगों को मैं कुचलकर दबाए हुए हूँ और इन्हें दबाना ही होगा। इम्तहान देकर जब घर आओगे तब मैं अच्छी तरह बताऊँगी कि मैं मान नहीं करती। सच्चा प्रेम ही हमारे जीवन का पथ है।

बस यही लाइनें बराबर पढ़ता हुआ मैं लखनऊ गया। कुछ ऐसा लगन लग गई था जो जीवन का लुभावनी शक्ति-कही जा सकती है।

उसी अमित उत्साह में मैंने एक एक प्रश्नपत्र किया था। वैसे मैं इम्तहान के बाद एक-दो हफ्ते मित्रों के साथ बड़ा ही बिताता था, लेकिन अब की मेरे जीवन की पहली हुई हालत ने तुरन्त ही घर चलने को मजबूर कर दिया। जब मैं वहाँ से चल दिया रास्ते में कई बार तकाजत्त तबियत हुई कि बीच में ही उतर पड़ूं। नहीं तो भाभी मेरा खूब ही मजाक बनायेंगी। बालम-बन्धु केशव आदि जब फबतियाँ कसेंगे तो मैं क्या उत्तर दूंगा? इसके अलावा तारा बेचारी को भी कम बातें नहीं सुननी पड़ेंगी। मेरी व्यग्रता से उसे सुहस्ते भर की लड़कियाँ झूठा मारेंगी। पर यह सब कुछ सोचते हुये भी मैं चला आया और घर में पैर रखते ही मालूम ने जब यही उपक्रम किया तो मैं मन ही मन कटता हुआ अपने कमरे में चला गया। कपड़े उतारकर बाहर भाई साहब के पास जाकर उन्हें इम्तहान का हाल बताने लगा।

उसी दिन नहीं उसी रात को जब दीपक की जलती हुई लौ पर गिरकर पतिंगे निस्वार्थ प्रेम की रागिनी गा रहे थे और तारा मेरे पास बैठी अविचलित भाव से उसको सुनने में तल्लीन हो रही थी उसके जिज्ञासापूर्ण नेत्रों में उस रहस्य के लिए कई प्रश्न थे उस विह्वल आत्मा के लिए अनन्त कौतूहल था और हृदयस्थ उमंगेदना के लिये उसके सुन्दर नेत्रों में थे दो बड़े-बड़े आंसू। जीवन की सबसे अमूल्य निधि ऐसे आंसुओं की बूंदें ही होती हैं जो स्वर्गीय अनुभूति को प्रकाशित कर रही हों। मैंने अचानक उसकी आंखों का ।

आंसुओं की बूंदें मोती बन बिखर गईं और अनुराग रंजित

होठ मुस्कराने की अपूर्व शोभा से खिल उठे। मैंने उस पर अपने प्रेम की मुहर लगा दी। उस समय उसने मुझे रोकते हुए कहा—ठहरो भी, देखो तो बेचारा पतिङ्गा अभी-अभी जल मरा है और यह दूसरा भी वहीं जा रहा है।

मैंने कहा—जाने दो। यह प्रेम करता है।

वह पतिंगे का दीपक पर बारबार गिरना देखते हुए बोली—यह प्रेम करता है—अपना प्राण देकर—मैं भी तो तुम से प्रेम करती हूँ। पर मेरा प्रेम इसके प्रेम के सामने कितना तुच्छ है। क्या मानवीय प्रेम में ऐसा आदर्श-उत्सर्ग संभव नहीं?—मैं अपने जीवन के इस भार को अपरिसीम अभिलाषाओं के साथ वहन किये जा रही हूँ। गुलामी में मुझे और तुम्हें क्या आनन्द मिलेगा?

मैंने कहा—अव्यक्त और अज्ञात प्रतीत होनेवाले मानवीय प्रेम के आदर्श दिखाई देते हैं, वे भी अपरिसीम नहीं।

वह कुछ और भी कहना चाहती थी पर मैं बीच ही में पूछ उठा—मामी क्या कहती थी तारा?

उसके सुरत पर लज्जा की लालिमा स्पष्ट हो गई। और उसने लड़खड़ाते हुए कहा—वे ही जानें—आर तुमने तो वादा कर दिया है।

यह जवाब तो मिल गया। मैंने कुछ-कुछ अनुमान किया। यह ऐसी बात है जिसे वह अभी बताना नहीं चाहती।

दूसरे दिन तारा बीमार रही थी, और मैं किशोरी के साथ खाना खा रहा था तब मामी ने दुबारा कहा—लाला जी, इस तरह काम नहीं

क्षमा कर देगी। अन्त में हम दोनों का इस बार सच्चा अनन्त मिलन अवश्य होगा।

निरुद्देश्य

छुट्टी का दिन था और मजे की बसंती बहार। मैं घर से निकला निरुद्देश्य। टहलकर जरा बाहर सड़क पर गया। फिर घूमकर गली में आया। एक मित्र को पुकारा। जरा हवा, बहार। वह बोले—"आओ भैया कुछ काम की बातें हों।"

मैंने कहा—'काम के लिए इतने के और दिन हैं। आज तो बहलाने को यार।

"अच्छी बात है।

चलो फुर्रत हुई। जान बची, लाखों पाये। मित्रों का एक दूसरा धोखा खाया। मैं कटी पतंग की तरह उसी तरफ को उड़ गया। बड़ा मजा रहा। खूब मजाक हुई। दुपहरी को एक नींद सो गया था। वह हरारत अब दूर हुई।

हाथ के मनोरंजन की जगह आजकल साइकिलवालों ने ली है। फिर देखो, हाथ में हैंडिल पकड़े हवा में उड़े जा रहे हैं। मैंने पुकारकर कहा—"अजी ओ~~~~।"

क्षमा कर देगी। अन्त में हम दोनों का इस बार सच्चा अनन्त मिलन अवश्य होगा।

निरुद्देश्य

छुट्टी का दिन था और मन्ने की बसती बहार। मैं घर से निकला निरुद्देश्य। उठकर जरा बाहर सड़क पर गया। फिर घूमकर गली में आया। एक मित्र को पुकारा। जरा हवा खाया। वह बोले—"आओ बेटो कुछ काम की बातें हों।"

मैंने कहा—'काम के लिए हफ्ते के और दिन हैं। आज जी बहलाने दो यार।

"अच्छी बात है।

चलो फुर्सत हुई। जान बची, लाखों पाये। मित्रों का एक दूसरा झोंका आया। मैं कटी पतंग की तरह उसी तरफ को उड़ गया। बड़ा मजा रहा। खूब गपशप हुई। दुपहरी को एक मोड़ ले गया था। वह हरारत अब दूर हुई।

हाथ के कंगीवालों की जगह आजकल साइकिलवालों ने ली है। फिर देखो, हाथ में हैंडिल पकड़े हवा में उड़े जा रहे हैं। मैंने पुकारकर कहा—'अजी ओ··· ···।"

देखा रुक गये—उतर आये। मुस्कराकर बगैर पूछे ही कहा—चलो यों ही होस्टल की तरफ।

मैंने जबान दांत से काटकर पूछा—"मैं भी चल सकता हूं?"

"चलो।"

चाहा चलूं, पर रुक गया। एक साथ कई रुकावटें लग गईं। वह हंसकर चल दिये मैं रह गया। तब तुरन्त, घूमने की ठहरी। सब लोग चल पड़े। मेरे पैर में पुरानी चप्पी सिर की टोपी नदारद पर घर जाने की फुरसत कहां, और हजामत भी नहीं।

साढ़े चार बज चुके थे। हल्की धूप हवा का आलिंगन करती हुई कुछ नहीं मालूम पड़ती थी। हरे हरे खेतों की छटा फूली सरसों का अल्हड़ नाच। नीरव, निर्जीव प्रकृति में सजीव कल्पित साकार सौंदर्य और अनंत संगीत मुग्धभाव से किसी अज्ञात अगोचर के चरणों में अपनी अंजलि अर्पित कर रहे थे।

सड़क की हरी हरी छोमी चुगते हुये हम लोग चले। लहरों को छूकर आते हुये अनिल और आपस के विनोद से मन भी हल्का हो गया।

आंधी का रुख बदल गया है। आजकल यहां क्या है? वही दरिद्रता का नर्तन, वही विषाद का करुणालाप। लेकिन नदी के जिस कछार में हम जा रहे थे वहां प्रकृति का वैभव छूट रहा था। जी खुश हो गया मित्रों की चहचहाहट में मन मचलकर कहने लगा—एक कुटी बने। वहीं रहकर हम बहती हुई कविता को हृदय के पन्नों में बटोर लिया जाय।

दूर चने के खेत से एक किसान के लड़के ने गाया— 'उठु अलबेली बुहारि आउ अंगना। उठु ... । मालूम पड़ा सचमुच ही अलबेली प्रकृति मस्त पड़ी इठला रही है। बच्चे का कोमल भोला कंठ उस मधुर कर्तव्य की ओर ठेल रहा है।

[ख]

जहां कोई लक्ष्य नहीं वहां नियम भी नहीं। अनियम चले। पूरब पश्चिम उत्तर-दक्षिण-आबाद ही कोई दिशा छूटी हो। किसी से पूछना हुआ या और कुछ बतलाना पाप। सभी चुपचाप अपनी-अपनी धुन में मस्तानी चाल से, चले जा रहे थे।

सड़क की छोरी चुक गई। कछार की विस्तार-सीमा समाप्त हुई। इसी की उच्छृंखलता को ठेस लगी। मोड़कर देखा—ओहो! घर तो दूर छूट गया था।

कोई रुख नहीं, सीधे किनारों पर चढ़ने लगे। पैर में चट्टी थी न। उसका पुराना तस्मा उलझ गया। बड़ी आफत हुई। मित्र कहलानेवाले शत्रुओं ने एक कहकहे से मेरी परेशानी का स्वागत किया। खैर करके आगे चला। दो कदम बाद ही एक झटकटैये पर पैर पड़ गया। कांटे चुभ गये। मैं उछल पड़ा फिर बैठकर उन्हें निकालने लगा। तबतक मित्र मंडली में 'आपुर्ने' का विवाद उपस्थित हो गया। याद नहीं आता किन किन रोमों के सिरे झटकटैया के पौधे चले और जड़, सब का उन्मूलन होने लगा। कांटों से छुटकारा पाकर मैंने कुछ झुंझलाहट के साथ कहा—

मालूम पड़ता है, अब कल्पवृक्ष की जगह इसी मायावीलता ने ली है।

सुकुमरा की तरह स्वच्छ मुस्कराहट को बेरहमी से बिखेरते हुये किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। सबकुछ समझ पड़ा कन्दतरि की विद्या के जो कुछ पन्ने लगे थे वे सब इन्हीं लोगों ने बरामद कर लिये हैं। जब विपद ही छिड़ गया तो मडकदेश ही क्यों मायकनी ऊ टकमारा, बूहर और ब्रह्मदंडी सभी बारी-बारी से आने लगे। सभी की सेवन-विधि की शास्त्र-सम्मत विवेचना मय अनायास के होने लगी। किसी ने मंजरी झाड़कर कोंटे चुमाये, किसी ने फूल तोड़कर कड़वे दूध में हाथ चिपचिपा लिया। मेरी बारी आई। खूब हंसा खूब बनाया। एक-एक की अच्छी तरह खबर ली। जी खुश हो गया। सब लोग आगे बढ़ चले। रुके तो सिर्फ एक पनघट पर। गांव की बहुएं सशंकित हिरनियों की तरह घूंघट के भीतर से एक दूसरी का मुंह ताकने लगीं। पानी भरनेवाली ने पानी भरना रोक दिया। प्यास तो लगी थी शायद सभी को। पर किससे कहते। परदे की प्रथा का मन-ही-मन श्राद्ध करते हुये चल पड़े। गांव में प्रवेश किया।

भड़भूंजे की दुकान मिली। हरे-हरे अनाज भूंजे जा रहे थे। शहर की टोली का भी सत्कार। कुछ पैसों के चने चुराये गये। मालीमाली सलोनी युवती ने नमक-मिर्च बगैर पैसों के ही देकर उच्छृंखल दिलों को कृतज्ञता के रेशमी धागे में मजबूत कर लिया। अगर आगे चलने की उत्कट आतुरता न होती, तो कुछ देर वहीं बैठकर चने चबाये जाते।

गांव के दूसरे सिरे पर जाकर एक सरसों लापु की कुटी में विश्राम किया, जल पिया और की थोड़ी देर तक वेदांत-चर्चा। चने

वर्गीय के छत्र चल में विशाल वट के नीचे पक्षियों के घोंसले की तरह, वह कुटिया थी। चौरासी देर में समस्त विकार निरोहित होकर वह तन्करण स्वच्छ निर्मल हो गया।

[तीन]

दिन अपने उजले धुले हुए वस्त्रों को समेट रहा था और संध्या धूमिल उत्तरीय को उतारकर फेंक रही थी। चलाचली का वक्त था। स्वच्छंद विहग अपने-अपने नीड़ों में आश्रय लेने जा रहे थे। हम लोग भी चले।

बाहर द्वार से चरवाहे लौट पड़े थे। अपनी तो कह सकता हूँ मेरा हृदय अपनी नवोढ़ा पत्नी की आकुलतामयी प्रतीक्षा का अनुभव कर बेचैन हो रहा था।

विनोदिनी कम्पनी के सभी सदस्य कहकहे लगाने के रंग में रंगे थे, सिर्फ महाशय बंकुलचन्द उर्फ ग्रीनलाल ही एक ऐसे थे जिन पर बुढ़ापे का उन्मत्त साया पड़ चुका था। वह हम लोगों के नेता थे बुजुर्ग थे—हर बात में, हर काम में क्योंकि उनका दिल अभी तक पूरा स्वस्थ और जवान बना हुआ था। वे आगे-आगे डबल मार्च करते हुए चले। हम मालगाड़ी के डब्बों की तरह उनका अनुसरण करने लगे।

एकाएक हाल्ट हो गया। मिस्टर ग्रीनलाल अपने समवयस्क किसी लुटेरे से उलझ पड़े। राम-दुआर हुई। कुशल-क्षेम पूछी। आगन्तुक ने कहा—वहीं जा रहा हूँ। गाँव के पास आश्रम में लड़की है न?

मिस्टर ग्रीनलाल ने गंभीरता से सिर हिला दिया। मालूम हुआ, वैसे

मालूम पड़ता है अब कल्पवृक्ष की जगह इसी मायवीलता ने ली है।

मुक्तचारा की तरह स्वच्छ सुस्कराहट को बेदर्दी से बिखेरते हुये किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। सबकर समझ गया, धन्वन्तरि की क्रिया के जो कुछ पन्ने खो गये थे वे सब इन्हीं लोगों ने बरामद कर लिये हैं। जब विषय ही छिड़ गया तो भद्रकदेश ही क्यों नायकजी ऊंटकम्बरा, बूढ़र और बेहरंदी सभी बारी बारी से खाने लगे। सभी की सेवन-विधि की शास्त्र-सम्मत विवेचना पथ अनोपान के होने लगी। किसी ने मंजरी भाड़कर कांटे चुमाये, किसी ने फूल तोड़कर कड़वे दूध में हाथ चिपचिपा लिया। मेरी बारी आई। खूब हंसा खूब गमाया। एक एक की अच्छी तरह खबर ली। जी खुश हो गया। सब लोग आगे बढ़ चले। बचे तो सिर्फ एक पनघट पर। गांव की बहुएं सशङ्कित हिरनियों की तरह घूंघट के भीतर से एक दूसरी का मुंह ताकने लगीं। पानी भरनेवाली ने पानी भरना रोक दिया। प्यास तो लगी थी शायद सभी को; पर किससे कहते। परदे की प्रथा का मन-ही-मन श्राद्ध करते हुये चल पड़े। गांव में प्रवेश किया।

भड़भूंजे की दुकान मिली। हरे-हरे अनाज भूंजे जा रहे थे। शहर की टोली का जी ललचाया। कुछ पैसों के चने भुनाये गये। मोतीमाली सलोनी युवती ने चमक-भिर्ने चमेर पैसों के ही देकर अच्छे फल दिखों को कृतज्ञता के रेशमी धागे में गांठी कर लिया। अगर आगे खाने की अत्यन्त उत्सुकता न होती तो कुछ देर वहीं बैठकर चबे चबाये जाते।

गांव के दूसरे सिरे पर आकर एक सन्तनी साधु की कुटी में विश्राम किया, जल पिया और की थोड़ी देर तक वेदांत-चर्चा। बने

वर्गाच के आ चल में विशाल वट के नीचे पक्षियों के घोंसले की तरह, वह कुटिया थी। जरासी देर में समस्त विकार तिरोहित होकर अ तःकरण स्वच्छ निर्मल हो गया।

[तीन]

दिन अपने उजले पुते हुए पंखों को समेट रहा था और संध्या धूमिल उत्तरीय को उतारकर फेंक रही थी। चलाचली का वक्त था। स्वच्छंद विहग अपने अपने नीड़ों में आश्रय लेने जा रहे थे। हम लोग भी चले।

बाहर द्वार से चरवाहे लौट चले थे। अपनी तो कह सकता हूँ, मेरा हृदय अपनी नवोढ़ा पत्नी की आकुलतामयी प्रतीक्षा का अनुभव कर बेचैन हो रहा था।

दिनांगिनी गाण्डी के सभी सदस्य अहरह जवानी के रंग में रंग थे, सिर्फ महाशय साकुनचन्द उर्फ जीनतान ही एक ऐसे थे जिन पर बुढ़ापे का उपनाम साफ चढ़ चुका था। वह हम लोगों के नेता थे बुड्ढों थे—हर बात में, हर काम में। क्योंकि उनका दिल अभी तक पूर्ण स्वस्थ और जवान बना हुआ था। वे आगे आगे बराबर मार्च करते हुए चले। लोग मालमाड़ी के बच्चों की तरह उनका अनुसरण करने लगे।

एकाएक हल्ट हो गया। मिस्टर जीनतान अपने समवयस्क किसी लड़के से उलझ पड़े। राम मुहार हुई। कुशल-क्षेम पूछी। आगंतुक ने कहा—यहीं आ रहा हूँ। गाँव के पोस्ट आफिस में लड़की है न?

मिस्टर जीनतान ने गंभीरता से सिर हिलाया। मालूम हुआ वैसे

वह सब कुछ जानते हो।

शायद साथियों की दशा का उन्हें अनुमान था इसलिए कि कहा—अच्छा आइए। बहुत दिनों से आपका चूरन चखने को नहीं मिला किसी दिन मकान पर लाइएगा।

"हां-हां जरूर —कहकर वे अपनी राह लगे और हम लोग घर की तरफ मुड़े। मैंने मि जीनतान से पूछा—यह कौन थे बगल की गली में चूरन था।

जीनतान—हां, इनका बड़ा मजेदार और बड़ा लम्बा किस्सा है बेचारे आजकल चूरन बेचते हैं।

एक साथी ने कहा—हां, हालत से मालूम पड़ता है, बड़े गरीब हैं।

[चार]

घर पहुँचने में देर थी। मेरे आग्रह से जीनतान महाशय ने किस्सा आरंभ किया कहा—बीस-बाईस बरस पहले यह कहीं से बदल कर अपने यहां कलकत्ते में आया था। उसी समय एक और बाबू भी आया। दोनों थे परदेशी, दोनों ही थे अकेले। मुरव्वत हुई। साथ ही साथ रहने लगे—मित्र मित्र की तरह भाई भाई की तरह। खाना भी साथ रहना भी साथ ही, और सफर भी साथ ही। मजा था—सिर्फ मजा।

कुछ दिन बाद दोनों अपनी-अपनी स्त्रियों को भी ले आये। एक बड़ा-सा मकान लिया गया। ऊपर ऊपर के कमरे बांट लिये गये न-मीन के।

ऐसा पुरुषों में मेल था उससे अधिक स्त्रियों में हो गया। एक

छुटी के बिना छुए मन चैन न होती। दोनों मित्र यह देख-देखकर मन
ही-मन मुस्करा देते, पुलकित और प्रसन्न होते थे। दोनों परिवारों को अपने
रहने पर भूल गये थे।

कुछ दिनों बाद इन्होंने अपने मित्र और साथी को नवीन सृष्टि
की सूचना पर बधाई दी। उन्होंने रुककर कहा—आशा है, मुझे भी शीघ्र
ही ऐसा अवसर मिलेगा। दोनों की भीमतिथि सुन रही थीं। बड़ा तमाशा
था। मन ही-मन खुश होकर भी दोनों ही अपने अपने कुछ स्वामित्वों
से रूठ गईं।

इनके मित्र अपनी पत्नी को घर से जा रहे थे। इनकी पत्नी की राय
के मुताबिक इन्होंने रोक दिया कहा—अभी नहीं रहने दो। घर क्या है,
तेरी स्त्री सब कर लेगी।

समय हो चुका था। बच्चा दो-चार दिन में होने ही वाला था
कि इनके तबादले का हुक्म आ गया। चौबीस घन्टे में दो सौ मील पहुँच
कर चार्ज लेना था। बड़ी आफत आ पड़ी। मित्र घबरा गये। मित्र की
स्त्री अपनी असहाय दशा का अनुमान करके रो पड़ी।

आखिर तय किया—कुछ दिन के लिए पत्नी को यहीं छोड़कर
चले जायँ। मित्र ने साश्चर्य इनके चेहरे की तरफ देखा, दोनों ही निर्वाक
स्तब्ध रह गईं। मित्र की स्त्री ने तो अनेक धन्यवाद दिये।

वह चल पड़े। कुछ मित्र स्टेशन तक साथ आकर इन्हें गाड़ी
पर बिठा गये।

आठ दस दिन बाद इन्हें अपनी स्त्री की चिट्ठी मिली—बीबी का

हाल बहुत खराब हो रहा है। अच्छा नहीं हो रहा है। मनोहर बाबू सोचते हैं, आपरेशन हो जाय। कहीं जीजी को कुछ हो न जाय। उनकी बुरी दशा है।

उसी दिन थोड़ी देर बाद सिकंदर मनोहर बाबू का तार लिया—जी का स्वर्गवास हो गया। आपरेशन का कोई फल नहीं हुआ।

तीसरे दिन फिर जी की चिट्ठी मिली। उसने लिखा था—तार मिल चुका होगा। जीजी की मृत्यु के कारण मेरा तो दिल टूट गया है। मनोहर बाबू का तो हाल बे हाल है। पिछले तीन दिनों से वे बदहोश पड़े हैं। आज कुछ-कुछ हुशियार भी हैं। ईश्वर! बड़ा हलका है।

वह बेचारे बड़ी आफत में पड़े। ऐसी दशा में जी को छोड़ कैसे पहुँच जाय? व्यर्थ जाकर खर्च करने की सामर्थ्य नहीं। पत्र का उत्तर दे दिया। तीन ही छुट्टी लेकर पहुँचने को लिख दिया।

आठ दिन बाद दरख्वास्त दी। छुट्टी मंजूर हुई लेकिन बड़े दिन की छुट्टियों के बाद। बात कितने ही दिनों को टल गई। पांच या सात जनवरी को रेल में सवार होकर वहां पहुँच गये। इक्का किया सीधे घर आ पहुँचे। घर घर में तो बड़ा सा ताला पड़ा था। पड़ोसियों से पूछते डर-सा लगा। बस डाकखाने की तरफ भागे।

डाकखाने का भी कायाकल्प हो चुका था। सब नये-नये बाबू थे। पता किया उत्तर मिला—बाबू मनोहरलाल का तबादला हो गया है। तबादला भी नजदीक नहीं तीस सौ मील दूर। कानों पर विश्वास नहीं हुआ।

सकी। शाम को मित्र घर चलने लगे, पूछा—चलोगे न ?

वह बगैर उत्तर दिये ही चल पड़े। मित्र ने अच्छा सा मकान किराये पर ले रक्खा था। पहुँचकर कुण्डी खटखटाई। दुर्गन्धिले से छन छन की एक परिचित ध्वनि भीतर दरवाजे तक आकर रुक गई। किवाड़ खुल गये, पर कोई नजर न आया। चुपचाप कुण्डी खोलकर एक छाया घर के अन्दर छिप गई। पूरी तरह न देखकर भी इन्होंने पहचान लिया।

बाहर बैठक में ये शाम को ठहराकर मित्र अन्दर गये। दस-पन्द्रह, बीस-पच्चीस मिनट के जगह एक घण्टे से अधिक हो गया, लेकिन कोई न आया।

कमरा बिलकुल अन्धकारपूर्ण हो गया, पर कोई खबर लेनेवाला नहीं। किसी तरह न रहा गया तो इन्होंने धीरे से अन्दर झांका। वहां भी कोई नहीं। साहस करके अन्दर प्रवेश किया। दालान को पारकर आंगन में आंगन से दूसरी दालान में फिर उसी तरह चुपके से कोने में चढ़ गये। ऊपर खुली छत पर पास-पास तीन कमरे थे। एक कमरे से रोशनी निकल कर छत पर फैल रही थी। दूसरा कमरा अन्धेरा पड़ा था। उसी में घुस गये। किवाड़ की दराज में आंख लगाकर देखा—बहिन गुलाबी रेशमी साड़ी पहने इनकी पत्नी मित्र की गोद में बैठी थी। शायद आंसू बहा रही थी। मनोहरलाल गलबहियां डाले उसके आंसू पोंछ रहा था।

सोच सकते होंगे उस समय की इनकी दशा। फिर भी बहादुर खड़ा ही रहा। मित्र ने स्त्री का बार-बार प्यार करके कहा—तुम डरती क्यों हो। मैं जाकर उन्हें चिट्ठी दिये देता हूं। समझदार होंगे तो अभी चले

आपको कहीं धर्मशाला में जाकर डेरा डालेंगे। गड़बड़ करेंगे, तो दो धक्के देकर निकाल दूंगा।

क्रोध के कारण इनका शरीर कांपने लगा। इधर उधर कमरे में तलाश किया कुछ मिला नहीं। जी में आया खाली हाथ ही पहुँचकर इनों के सिर लड़ाकर फोड़ डाल मारें और मर जायें लेकिन फिर कुछ सोचकर थमक गये। चुपचाप कांपते हुए बाहर निकल आये। जीने से होकर बैठक में पहुंच गये। सब असबाब वहीं छोड़कर सिर्फ एक लाठी लेकर निकल पड़े।

कई दिन बाद मनोहर बाबू ने एक पत्र लाकर अपनी नई स्त्री को दिया। आशीर्वाद बांचकर उसका जी भारी हो गया।

[सोच]

जीनतान महाशय ने कहा—अब आइए अपने घर आग किसी और दिन बुलाएंगे। घर किसी ने न माना, ऐसी मजेदार कहानी सुनने के लिए सभी आतुर हो रहे थे। एक जगह उन्हें पकड़कर बिठा लिया गया।

जीनतान महाशय ने विवश होकर कहना शुरू किया—जो घर से एक लाठी लेकर निकलता है वह मोक्ष साधुओं में जा मिलता है। हिंदुस्तान में यह प्रथा बहुत पुरानी है। इन्होंने भी अनमन में सन्यास धारण कर लिया। बस्तियों में आना छोड़ दिया, मनुष्यों से मिलना छोड़ दिया। एकांत वनों में, निर्जन कन्दराओं में रहकर आत्मा के लिए शांति की खोज करने लगे। बरसों तपश्चर्या में बीत गये। सुदूर बस्तियों में इनकी शोहरत हो गई।

गृहस्थ स्त्री-पुरुष इनको पहुँचा हुआ महात्मा समझने लगे। इनके मुख से आशीर्वाद के दो शब्द सुनने के लिए वे अपना सर्वस्व छोड़ने को तैयार थे। लेकिन इनके मन में शांति न थी, आत्मा अन्तर की अग्नि-ज्वाला से भस्मसात् हुई जा रही थी।

अंत में यही प्रतीतकर यह व्यथित हो उठे कि किस अदृश्य शक्ति ने उस समय मेरे हाथों को जकड़ दिया था मेरी बुद्धि को कुण्ठित कर दिया था! मुझे चैन हो भी तो कैसे! वे दोनों आनन्द उड़ाते रहें और मैं अकर्मण्य बनकर आत्मानन्द में लीन होने की चेष्टा करूं! नहीं, उनके आनन्द का आमूल उच्छेद किये बगैर मुझे शांति कहां!

विन्ध्याचल पर्वत का सघन अंचल छोड़कर एक दिन महात्माजी फिर वहां संसार की तरफ चल पड़े। अदम्य-उत्साहित मुख मण्डल पर वही रामनूर था और थी वही दैवी लिप्सा।

बाबू मनोहरलाल फिर पुराने दफ्तर में पहुंच गये थे; पुराना ही मकान किराये पर ले रखा था। इन कई बरसों में उनकी अच्छी तरक्की हो गई थी। एक लड़का और दो लड़कियां तीन संतानें थीं। गृहस्थी के सभी सुख उन्हें प्राप्त थे।

जब इन्होंने आकर वहीं गली में अपनी धूनी रमाई, तो उपयुक्त बातें शीघ्र ही मालूम हो गईं।

चार छः दिन में महात्मा के अलौकिक वैराग्य की चारों तरफ चर्चा होने लगी। महात्माजी किसी की चाई छूते न थे। हां, भक्ति भाव से पहुँच जाना, घण्टे-दो घण्टे सत्संग करना उसे आशीर्वाद दे देते। उनकी बहुत

सी बातें तो अक्सर सब देखी जाती।

एक दिन संध्या के झुटपुटे में लड़के को गोद में लिए एक स्त्री दो लड़कियों के साथ आई। महात्माजी प्रार्थनाभजन कर रहे थे। स्त्री आकर चुपचाप बैठ गई। चंचल बालक लड़कों से मिल कर रो पड़ा। महात्माजी की समाधि भंग हो गई। बड़ी देर तक एकटक लड़के लड़कियों की बालक्रीड़ा देखते रहे।

महात्माजी की समाधि खुलते देखकर स्त्री ने झुककर चरणों में सिर नवाया और गुंजित आर्द्र कंठ से कहा—महाराज मैं बड़ी पतिता हूं फिर भी इस जीवन में मैंने बड़े आनन्द उठाये हैं। सब इच्छाएं तो पूरी हो चुकीं, केवल एक शेष है। वह पूर्ण हो जाय कि बस, यही आपसे पूछने आई हूं।

महात्मा ने सिर हिला दिया। वह स्त्री को अभी तक पहचान न सके थे। स्त्री ने उसी तरह सजल नेत्र अतीत जीवन की सारी कथा सुनाकर पूछा—भगवन्, मेरे स्वामी उसी समय, उसी अंधेरी रात में चले गये। पाप के आवरण ने मुझे इतना अन्ध रक्खा था कि मैं कुछ न कर सकी। तीसरे दिन उनका पत्र आया। उसमें उन्होंने मेरे गर्भज पाप सन्तान को फलने-फूलने का आशीर्वाद दिया था। उसी के फलस्वरूप आज मेरी गोद भरी पूरी है। भगवन् मेरी एक ही अभिलाषा शेष है कि एक दिन मेरे स्वामी आकर अपने आशीर्वाद के फल को देख जायें। मुझ पापिनी के प्रज्वलित हृदय को अपने शीतल दर्शन से शांत कर जायें। भगवन्! क्या वे आवेंगे?

महात्मा की आँखों से थोड़े-से आँसू लंबी बिखरी हुई जटाओं में गिर पड़े। उन्होंने एक बार फिर तीनों लड़के-लड़कियों पर गहरी नजर डालकर भर्राई हुई आवाज में उत्तर दिया—हाँ वह अवश्य आयेंगे। रोओ नहीं भाग्यवती!

स्त्री ने आकुल होकर उत्कंठा से पूछा—कब?

"बहुत शीघ्र"

'आखिर, कब तक? मैं रास्ता देखती-देखती बहुत थक गई हूँ।"

"विश्वास रक्खो, शायद कल ही आ जाय।"—महात्मा ने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा।

स्त्री बड़ी श्रद्धा के साथ महात्मा के चरणों में नमस्कार देकर अन्धकार में एक ओर चली गई। महात्माजी ने दीपक बुझा दिया। धूनी पर राख उलट दी और वट के नीचे आह भरकर लेट रहे। सारी रात करवटें बदलकर काटी। आँखों से जितना पानी निकल गया हृदय का कितना अमृत ढुलक गया। बार बार रह-रहकर एक-एक बात की याद आती थी। सोचते थे हाय वह अतीत! आह भरते थे और शून्य में कुछ खोजते थे। फूल-से कोमल उन बालकों की तस्वीरें आँखों के सामने नाचती थीं।

प्रातःकाल महात्माजी ने भाई को बुलाकर चलाए मुहवा दी। धूनी का लकड़ उखाड़कर फेंक दिया और जिसके कर्मदग्ध को अंतिम नमस्कार करके एक भागे-भागे नागरिक की तरह उठ खड़े हुये। सूर्यमर्द्दन

के जप-जुआरी महात्मा की मृत्यु हो गई और उनकी जगह आविर्भूत हुए बालक मद्र पुरुष। पूरे ग्यारह बरस बाद एक बार फिर बाबू मनोहरलाल के दरवाजे की सांकल पीटकर गम्भीर भाव से खड़े हो गये। बड़ी लड़की ने निकलकर कहा—बाबू दफ्तर गये हैं आप कहां से आये हैं?

इन्होंने कहा—तुम्हारी मां कहां हैं? जाओ उन्हें बुला लाओ।

लड़की मां को बुला लाई। आते ही स्त्री ने पहचान लिया। वह किवाड़ पकड़कर खड़ी रह गई। उसकी आंखों से आंसू की धारा झरझर गिरने लगी। संकोच और लज्जा से वह आंख न मिला सकी।

इन्होंने कहा—मुझे पहचाना सरला?

सरला ने सिर झुकाकर कहा—बस, क्षमा कीजिए। मैंने बड़ा पाप किया है।

इन्होंने कहा—और अब उसका जिक्र करने की जरूरत नहीं। मानव बड़ा प्रबल होता है। भूल जाओ उस बात को, अब मैं तुम्हारे घर मेहमान होकर आया हूं। बैठो कुछ स्वागत कराओ।

सरला के मुंह से एक भी शब्द न निकला। उसका कलेजा शायद गले में आकर अटक गया था।

शाम हुई। मनोहर बाबू आये। रास्ते में से अनायास प्रकट हुए स्वर्गिक की तरह मित्र को घर पर कब्जा जमाये देखकर उनका कलेजा धड़क गया। कुछ कहा नहीं। खाना खाया चुपचाप लेट रहे। रात को एक बजे मेहमान स्वयं आकर उपस्थित हुआ, बोला—मित्र, हो गया सो हो गया। ग्लानि से आत्मा को गिराने की जरूरत नहीं। बस आनन्द से रहो।

महात्मा की आँखों से थोड़े-से आँसू लंबी बिखरी हुई जटाओं में गिर पड़े। उन्होंने एक बार फिर तीनों लड़के-लड़कियों पर गहरी नजर डालकर भर्राई हुई आवाज में उत्तर दिया—हाँ वह अवश्य आयेंगे। रोओ नहीं, भाग्यवती।

स्त्री ने आकुल होकर उत्कंठा से पूछा—कब?

"बहुत शीघ्र"

'आखिर कब तक? मैं रास्ता देखती-देखती बहुत थक गई हूँ।"

"विश्वास रक्खो, शायद कल ही आ जाय।'—महात्मा ने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा।

स्त्री बड़ी श्रद्धा के साथ महात्मा के चरणों में मत्था टेककर अन्धकार में एक ओर चली गई। महात्माजी ने दीपक बुझा दिया। धूनी पर राख उलट दी और वट के नीचे आह भरकर लेट रहे। सारी रात करवटें बदलकर काटी। आँखों से कितना पानी निकल गया हृदय का कितना अमृत सूख गया। बार बार रह-रहकर एक-एक बात की याद आती थी। सोचते थे हाय वह अतीत! आह भरते थे और शून्य में कुछ खोजते थे। फूल-से कोमल उन बालकों की तस्वीरें आँखों के सामने नाचती थीं।

प्रातःकाल महात्माजी ने भाई को बुलाकर जमाए बुझवा दीं। धूनी का लकड़ उलाड़कर फेंक दिया और चिमटे कमंडल को अंतिम नमस्कार करके एक गेरुवे-वाले नागरिक की तरह उठ खड़े हुये। क्षणभर पहले

के जब मुरारी महाशय की मृत्यु हो गई और उनकी जगह आविर्भूत हुए बदरक मह पुरुष। पूरे ग्यारह बरस बाद एक बार फिर बाबू मनोहरलाल के दरवाजे की सांकल पीटकर गम्भीर भाव से खड़े हो गये। बड़ी लड़की ने निकलकर कहा—बाबू दफ्तर गये हैं आप कहां से आये हैं?

इन्होंने कहा—तुम्हारी मां कहां हैं? जाओ उन्हें बुला लाओ।

लड़की मां को बुला लाई। आते ही स्त्री ने पहचान लिया। वह किवाड़ पकड़कर खड़ी रह गई। उसकी आंखों से आंसू की धारा झरझर बहने लगी। लेकिन और लज्जा से वह कोई न बोल सकी।

इन्होंने कहा—मुझे पहचाना सरला?

सरला ने सिर झुकाकर कहा—बस क्षमा कीजिए। मैंने बड़ा पाप किया है।

इन्होंने कहा—खैर, अब उसका जिक्र करने की जरूरत नहीं। भाग्य बड़ा प्रबल होता है। भूल जाओ उस बात को, अब मैं तुम्हारे घर मेहमान होकर आया हूं। बैठो कुछ जलपान कराओ।

सरला के मुंह से एक भी शब्द न निकला। उसका कलेजा खाप्पर लेने में आकर अटक गया था।

शाम हुई। मनोहर बाबू आये। रास्ते में से अनाथालय पकड़ हुये स्टूडेन्ट की तरह मित्र को घर पर कब्जा जमाये देखकर उनका कलेजा धड़क गया। कुछ कहा नहीं। खाना खाया, चुपचाप लेट रहे। रात को दस बजे मेहमान स्वयं आकर उपस्थित हुआ, बोला—मित्र हो गया सो हो गया। ग्लानि से आत्मा को गिराने की जरूरत नहीं। बस आनन्द से रहो।

मेरा तो यही आशीर्वाद तब था और अब भी है। हां एक बात विशेष है। अगर इजाजत हो, तो मैं भी दरबाने की कोठरी में पड़ा रहूं। इन लड़के लड़कियों का मोह मेरे पैरों में बेड़ियां डाल रहा है।

मनोहर बाबू को अनिच्छा होते हुये भी सम्मति देनी पड़ी। मेहमान का डेरा उसी समय से बाहर कोठरी में पड़ा है। वहीं वे अब भी रहते हैं। दिन भर चूरन बेचकर कुछ पैसे पा जाते हैं और लड़के-लड़कियों में बांट देते हैं। सरला के बच्चे इनसे विशेष हिले हैं। बड़ी लड़की का ब्याह हो गया है। इन्होंने ही कन्यादान किया था। कभी-कभी एक-दो दिन के लिए वह बड़ी लड़की को देखने चले जाते हैं। आज भी वहीं गये हैं। जब तक वह लौट न आयेंगे, छोटा लड़का और लड़की सरला की जान खा डालेंगे। उन लड़के-लड़कियों को अपना ही समझने के लिए भगवान ने इन्हें सुबुद्धि दे दी है। लेकिन मनोहर बाबू की शंका आज अभी तक कम नहीं हुई है।

हत्यारा

मनुष्य की सबसे सुन्दर सृष्टि है उसके भगवान्, उन्हें बनाकर फिर वह उन्हीं से कलाकार की प्रेरणा पाता है। दीनानाथ की सबसे सुन्दर सृष्टि थी मुक्ति भावना। कभी उसीसे उस हत्या की प्रेरणा हुई। जिस दिन उसने सोचा—संसार एक बंधन है एक कारागार है यहां सभी सत्य मुक्त रह हैं, उस दिन उसकी वैदिक आत्मा बंदी की तरह छटपटा उठी।

जिस स्वप्न से दो हजार साल पहले महात्मा ईसा सलीब पर चढ़ गये थे जिस विचार से राजकुमार सिद्धार्थ ने कपिलवस्तु के राजमहल को छोड़कर रास्ते की खाक छानना कोवल का लक्ष्य निर्धार किया था, ठीक उसी ख्याल से दीनानाथ ने इस शताब्दी में अपना नया प्रयोग आरम्भ किया। एक ही जगह के लिए अलग अलग रास्तों से चलना बुद्धिमानों का स्वभाव है। ईसा अपने लिये नहीं संसार के लिये मरे थे; बुद्ध ने बोधिसत्व का दुष्कर प्रयास पीड़ित विश्व के लिये ही किया था। दीनानाथ ने भी दीन-दुखियों को मुक्त करना अपना परम कर्तव्य मान लिया।

पहले पहल उसे दया आई एक मस्जिद पर, जो गद्दी पर बैठने

मेरा तो यही आशीर्वाद सब था और अब भी है । हाँ एक बात विशेष है । अगर इजाजत हो, तो मैं भी दरवाजे की कोठरी में पड़ा रहूँ । इन लड़के लड़कियों का मोह मेरे पैरों में बेड़ियाँ डाल रहा है ।

मनोहर बाबू को अनिच्छा होते हुये भी सम्मति देनी पड़ी। मेहमान का डेरा उसी समय से बाहर कोठरी में पड़ा है । वहीं वे अब भी रहते हैं । दिन भर चूरन बेचकर कुछ पैसे पा जाते हैं और लड़के-लड़कियों में बाँट देते हैं । सरला के बच्चे इनसे विशेष हिले हैं । बड़ी लड़की का ब्याह हो गया है । इन्होंने ही कन्यादान किया था । कभी-कभी एक-दो दिन के लिए यह बड़ी लड़की को देखने चले जाते हैं । आज भी वहीं गये हैं । जब तक यह लौट न जायेंगे छोटा लड़का और लड़की सरला की जान खा डालेंगे । उन लड़के-लड़कियों को अपना ही समझने के लिए भगवान ने इन्हें सुबुद्धि दे दी है लेकिन मनोहर बाबू की शंका शायद अभी तक कम नहीं हुई है ।

हत्यारा

मनुष्य की सबसे सुन्दर सृष्टि है उसके भगवान्। उन्हें बनाकर फिर वह उन्हीं से बराबर की प्रेरणा पाता है। दीनानाथ की सबसे सुन्दर सृष्टि थी मुक्ति भावना। क्योंकि उसीसे उस हत्या की प्रेरणा हुई। जिस दिन उसने सोचा—संसार एक बंधन है एक कारागार है वह। सभी सदा जुते रहते हैं, उस दिन उसकी वैदिक आत्मा बंदी की तरह छटपटा उठी।

जिस ख्याल से दो हजार साल पहले महात्मा ईसा सलीब पर चढ़ गये थे जिस विचार से राजकुमार सिद्धार्थ ने कपिलवस्तु के राजमहल को छोड़कर रास्ते की खाक छानना जीवन का लक्ष्य स्थिर किया था, ठीक उसी ख्याल से दीनानाथ ने इस दुनियादारी में अपना नया प्रवेश आरम्भ किया। एक ही जगह के लिए अलग अलग रास्तों से चलना बुद्धिमानों का स्वभाव है। ईसा अपने लिये नहीं संसार के लिये मरे थे; बुद्ध ने बोधिवृक्ष का सुन्दर प्रवास पीड़ित विश्व के लिये ही किया था। दीनानाथ ने भी दीन दुनियों को मुक्त करना अपना परम कर्तव्य मान लिया।

पहले पहल उसे दया आई एक मजदूर पर, जो गंदगी पर बैठने

के लिये मिनमिना रही थी। दीनानाथ ने अपनी लंबी शिखा में तीन बार ग्रन्थि देकर सोचा—शायद वह पछाड़ मारकर रो रही है या अपने तुच्छ जीवन से बेजार है। ओफ! ओफ!—परोपकार तेरी शक्ति क्षीण हो गई! तू मुझे ज़रा बल नहीं दे सकता कि मैं इस दुखग्रस्त आत्मा को सांत्वना दे सकूं। ऐ मायामय अन्धकार! तू ने एक प्रकाश की किरण तक मेरे पास नहीं रहने दी। नाश! सर्वनाश!

दीनानाथ चौंक पड़ा। एक मकड़ी ने मक्खी को दबोच लिया। थोड़ी-सी मिनमिनाहट थोड़ी-सी फड़फड़ाहट! फिर सब शांत मौन नीरव।

अन्धकार का हृदय चीरकर प्रकाश आंखों में भर गया। अब जमाना ही कुछ और है। बीसवीं सदी है। महलों का रास्ता गलियों में तय होता है। कुछ का कुछ करने से ज्यादा लाभ था और दीनानाथ को शायद छः मिनट से भी कम। उन्हें एकांत कक्ष में साक्षात् हुआ था इन्हें अपने जमानखाने की उपाधि के अन्दर।

दीनानाथ ने मस्त शरीर ज़रा चुस्त करके मकड़ी को शाबाशी दी—वाह, खूब!

[दो]

उस दिन से क्यों उसी क्षण से दीनानाथ मुक्ति का सीधा रास्ता पा गया। वर्ष भर की साधना में उसे प्रकाश की जो ज्योति मिली, वह उसकी समझ से अपूर्व थी। वह सत्यपूर्वक पीड़ित विश्व को उस ओर ठेलकर कर्म-सन्यासकों का कठिन कार्य करने लगा।

उसे प्रत्यक्ष रूप से यह प्रतिभासित हो गया कि प्राणिमात्र में सुख और शान्ति की चिरंतन अनुभूति का अभाव है। सभी श्रेणियों में, सभी वर्गों में उस अभाव की विशेष मात्रा से बेचैनी बढ़ रही है। कहीं भी संतुष्टि नजर नहीं आती। वह दुश्चिन्ता और शोक से जीव मात्र व्याकुल हो रहे हैं।

सांसारिक सुख के कारण जीवन में जो क्षोभ उत्पन्न होता है, उससे किसी का भी निस्तार नहीं। यह क्षोभ जितना अवश्य और अनिच्छित है उतना ही वह अनिवार्य-सा हर-एक के पीछे लगा है जो जितने वेग से भागकर उससे प्राण छुड़ाना चाहता है, वह उतनी ही तत्परता से उसके गले का हार बनकर उसके साथ लगा रहता है।

दीनानाथ को ताज्जुब तो इस बात पर होता था कि अनेक अर्थों के आविष्कारों में मनुष्य ने क्यों अपने जीवन का दुरुपयोग किया? जो चिंता उसके अन्दर थी, वही क्यों नहीं स्वाभाविक रीति से किसी के मस्तिष्क में उदय हुई? जिन लोगों ने जीवन-मरण के लोगों को परदे से बाहर लाने का यत्न किया वे क्यों नहीं कृतकार्य हुए? इतना सीधा-सा रास्ता उन्हें क्यों नहीं सूझा? क्या मृत्यु ही जीवन का परमार्थ नहीं है? ओह! उसकी गति कैसी विभीषिकापूर्ण है। अनन्त सुख और चिरंतन शांति में वही तो जीवन की समस्त क्लान्ति को विलीन कर देती है। उसके द्वार के अन्दर पैर रखते ही अभावों का अभाव हो जाता है।

उसी की उज्ज्वल आलोक पूर्ण मुखमुद्रा को लोगों ने अन्धकार की कालिमा समझने की भूल की है। मनुष्य की भ्रमपूर्ण बुद्धि के मद-पुराने

संस्कारों को देखकर कहना पड़ता है कि अगर ऐसी निरपेक्ष चीज कहीं बाजार में बिकती होती, तो कोई उसे तनिक के सिक्कों के मोल भी नहीं खरीदता। लेकिन विधाता की परम कृपा का फल मानकर आज भी उसका आसन वैसा ही गौरवास्पद बना है। और अब जब कि दीनानाथ को सफलता की तह का ठिकाना मालूम हो गया है तो उसकी महत्ता और भी अक्षुण्ण हो गई है।

। बस मृत्यु को जीवनरूपी दिन की विश्रांति-पूर्ण रात्रि मानकर दीनानाथ मन ही-मन अपनी सफलता का अनुभव करने लगा। लेकिन यह उसकी विशाल-हृदयता है कि उसने खुद ही उस परमतत्त्व का आस्वादन करने का लोभ नहीं किया बल्कि निमुक्त नील काया की तरह, समस्त संसार के लिये उसका द्वार खोल दिया। यही क्यों अपने ही पावनाभिभूत हाथों से उसने इस परम पावन अनुष्ठान का आरम्भ किया।

[तीन]

। जीवन-रक्षा के लिये जैन-साधुओं की सतर्कता प्रशंसनीय है। उनकी दिनचर्या का विशेष अंश अनगिनत असंख्य कीटाणुओं के बचाव में ही व्यय होता है। दीनानाथ की लगन उनसे भी कहीं बढ़ चढ़कर थी। उसे तो दिन-रात सोते-जागते यही चिंता रहती थी कि किस तरह सृष्टि को सांसारिक क्लेश से छुटकारा दिला दिया जाय। शायद वह एक दिन में उतने जीवों को परलोक अवश्य ही भेज देता या जितने कई साधु मिलकर बचा न सकते होंगे।

[चार]

कर्मों के अनुसार ही स्वभाव में कोमलता और कठोरता का समावेश होता है। ब्रह्मा परशुराम में क्षत्रिय और क्षत्रिय बुद्धदेव में ब्राह्मणत्व की विशेषता सभी जानते हैं। दीनानाथ के स्वभाव में भी परिवर्तन शुरू से ही आरम्भ हो गया था। धीरे-धीरे दूसरों के दुखों की अनुभूति से उसका मन विरक्त हो गया। छोटे-छोटे जीवों से चलकर वह बड़े-बड़े जीवों को मारने लगा। उनके छटपटाने, उनके चिल्लाने का उसकी अन्तरात्मा पर कुछ भी असर नहीं पड़ता था।

एक दिन जब वह लाठी का प्रहार एक सोते हुए कुत्ते पर करना चाहता था उसके मित्र कालिकाप्रसाद ने आकर कुत्ते को भगा दिया और एक ओर खड़ा होकर हँसने लगा। मित्र की ढिठाई और नादानी पर दीनानाथ को कितना क्रोध पहुँचा यह शायद कालिकाप्रसाद को ज्ञात न हुआ। दीनानाथ को इस तरह अपनी ओर घूरते देखकर कालिकाप्रसाद ने हँसकर कहा—क्यों भला उसने क्या बिगाड़ा था?

दीनानाथ ने अविकारपूर्ण स्वर में कहा—तुम यह बात नहीं समझ सकते, उसके लिये फिजूल माथापच्ची करने से फायदा?

वह इतना कहकर शीघ्रता से अपने कक्ष के लिये चला गया। कालिकाप्रसाद खड़ा-खड़ा उसके विचित्र स्वभाव की आलोचना करता रहा।

दीनानाथ की उससे मित्रता थी, यह बात समझ सकना कठिन है। कारण कि दीनानाथ सदा से ही निर्मोही, निर्द्वन्द्व और निस्पृह था। वह किसी से लगाव नहीं रखता था। जहाँ किसी तरह के सम्बन्ध की गंध

आती, वहां से वह दूर जा खड़ा होता। उसके असहाय जीवन में प्रेम और स्नेह के अत्याचार का कभी सहा न था। मां-बाप से नहीं। भाई-बहनों की भी उसे याद न थी। उसका जीवन कठोरता और हृदयहीनता के सांचे में ढला था।

कालिकासहाय भी अजब स्वभाव का था। स्नेह-सम्बन्ध के कट्टर शत्रु दीनानाथ से बारबार भिड़ना उसे पसन्द आता था। जब देखो तब वह उसी के पीछे पड़ा रहता था। उधर दीनानाथ उसकी रंच भी परवाह न करता था। इस तरह विचित्र गति से उन दोनों की मित्रता लगड़े पैरों चल रही थी। एक हाथ की ताली बजाकर ही कालिकासहाय संतोष कर रहा था। लेकिन ऐसा वह क्यों कर रहा था? इसका जवाब शायद उसके पास भी न था।

आज जब कालिकासहाय ने एकाएक आकर कुछ ऐसा मग्न दिखा तो दीनानाथ रह न सका। वह मन-ही मन तिलमिलाकर एकदम में चला गया और किसी विचार में मग्न हो गया। कुछ देर तक ध्यानावस्थित होने के बाद वह यह सोच सका कि कालिकासहाय अज्ञानी है। उसे इतना ज्ञान नहीं है कि वह एक मक्खी की तरह अपने जीवन की असार्थकता समझ सके। 'मक्खी' का ध्यान आते ही उसे मकड़ी का भी ध्यान आ गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी दिव्य व्यक्ति ने उसे कुछ संकेत किया है। उसने कहा—हां अवश्य उस अज्ञानता से मुक्त करना होगा। वह मुझसे हित मानता है। शायद उसकी अन्तरात्मा इसीलिए उसे बार-बार इधर ले आती है। और अब उसे वह नहीं करना चाहता। मैं खुद ही चलकर उसकी

आत्मा को अमरसुख पहुँचाकर सुख करूँगा ।

वह चटपट एक चमचमाती हुई छुरी लेकर अपने अज्ञानी मित्र की तलाश में निकल पड़ा । थोड़ी ही दूर गया होगा कि कराहने की एक क्षीण आवाज ने उसे चौंका दिया । उसने देखा—एक कंकाल प्राय मानवमूर्ति रास्ते में एक तरफ पड़ी थी । उसमें मांस और रक्त का शब्द एकदम अभाव हो चुका था ।

दीनानाथ का हृदय न जाने क्यों यह दृश्य देखकर कांप उठा पर वह तुरन्त सम्भलकर खड़ा हो गया । मन को सुस्थिर करके पूछना चाहा—कहो विश्रांति की गोद में जाना चाहते हो ? क्या मैं तुम्हारे उद्देश्य में सहायता दूं ?

मृत्यु की गोद में छटपटाते हुए पुरुष ने कष्ट से व्यथित स्वर में कहा—थोड़ा पानी ।

दीनानाथ के तन-बदन में आग-सी लग गई । वह बोला—अभी तक पानी पीने की इच्छा रखते हो ?

उस पुरुष ने आंखें खोल दीं । चारों ओर देखकर कहा—हा राजदुलारी कहां गई ? मेरी प्यारी बच्ची ...

दीनानाथ—क्यों क्या चाहते हो ?

पुरुष—जीवन में केवल जीवन चाहता हूं । क्या तुम कोई देवता हो भैया ? हां ? मेरी प्यारी राजदुलारी ?

दीनानाथ—जीवन नरक है, तुम नरक की क्यों कामना करते हो ?

पुरुष—जीवन नरक ? आफ गजब जिसमें अनेक सुखों की

उपस्थित हुई वह— वह— —

दीनानाथ—हाँ वही। तुम अज्ञानता में पड़ी हो। कहो तो तुम्हें अज्ञान में छुटकारा दिला दूँ। बाला राज्य, मेरा अमूल्य समय जा रहा है। उसने अपनी तेज छुरी हाथ में ले ली।

पुरुष को क्रोध खुल गया। उसने कहा—आह! तुम हत्या कराना हत्या। अभी नहीं मरा है वह राजकुमार।

दीनानाथ ने पट के पास छुरी ले जाकर कहा—तुम मूर्ख हो। आओ यह उच्च रास्ता है—बस।

[पाँच]

अपरह्न-काल की किरणें पड़ रही थीं। दीनानाथ ने जाकर कालिकाप्रसाद को पुकारा। कुछ देर तक दीनानाथ दरवाजे को उलटकर वह वापस हुआ। वह आश्चर्य से अवाक खड़ा रह गया। एक अद्भुत लावण्यमयी कुमारी लड़की सामने खड़ी थी। उसके अपूर्व चेहरे पर विचार की छाया ने आश्चर्य बना दिया था। दीनानाथ मुग्ध भाव से कई क्षण तक उसकी ओर टकटकी लगाए खड़ा रह गया। वह लड़की भी मूर्तिवत् उसके एक तरफ निकल जाने की प्रतीक्षा में इसी तरह अचल बनी रही।

वह नवीनानाथ ने अन्दर से पुकारा—क्या कर रहे हो दीनानाथ? क्या कोई शिकार हाथ लगा है?

मोह भंग हुआ। दीनानाथ का शरीर एक दफा ऊपर से नीचे

तक सिहर उठा। उसने घी पर शासन करके कहा—अजी फिकर हो मैं तो शिकार की ही तलाश में आया हूँ।

इधर छत पर चले आओ—कहकर कालिकासहाय उसकी प्रतीक्षा में टहलने लगा। दीनानाथ पहुँचा तो कालिकासहाय ने व्यंग्य के भाव से पूछा—आज क्या जरूरत पड़ गई?

दीनानाथ ने अपनी कमर की छुरी पर हाथ फेरकर कहा—मुझे तुम्हारे ऊपर बड़ी दया आती है। कई दिन से मैं यह निश्चय कर रहा हूँ कि कम से-कम अपने एक परिचित मित्र को तो कुछ उपदेश दे सकूँ।

कालिकासहाय ने हँसकर कहा—मैं तो तुम्हारा उपदेश ग्रहण करने लायक नहीं हूँ। अभी मेरी बुद्धि परिपक्व नहीं है अभी संसार की किसी चीज से मुझे विरक्ति नहीं हुई है, इसलिये मैं उसका अधिकारी नहीं। हाँ, तुम्हारे उपदेश का एक श्रोता मुझे मिल गया है। वह मैं तुम्हें सिपुर्द कर सकता हूँ।

दीनानाथ उसके मुँह की ओर देखने लगा। उसने फिर कहा—कहो तैयार हो?

इसी समय कालिकासहाय की बहन कमलावती उस लड़की को साथ लेकर छत पर आ पहुँची। कालिकासहाय ने दीनानाथ से कहा—देखो यही वह लड़की है। इसका पहले ही से तुम्हारे मत की तरफ झुकाव है। अगर तुम इसे अपने धर्म में नहीं लेते तो कमलावती सारे पुण्य की भागी होगी। एक तो इसके शरीर में जान ही कितनी है, दूसरे कमलावती उसे ठेल-ठेलकर यमपुरी भेज देना चाहती है। बेचारी बड़ी गरीब असहाय और

निराश्रय है। तुम चाहो तो आकर थोड़ा बहुत उपदेश रोज कर जा सकते हो। जब वह पूरी तरह से तुम्हारी अनुगामिनी हो जायगी, तो कोई उसे रोकनेवाला नहीं। सच पूछो तो तुम्हारे मत की सार्थकता इसी तरह के प्राणियों में सिद्ध हो सकती है।

बड़े तर्क-वितर्क के बाद कालिकाप्रसाद ने दीनानाथ को तैयार कर लिया। उसने मन ही मन खुश होकर पुकारा—कमलावती अपना उपदेश खत्म करके उसे इधर ले आ। उसके लिए नए मास्टर आज रख दिए गए हैं।

कमला ने वहीं से पुकारकर जवाब दिया—नहीं मास्टर की जरूरत नहीं है। वह मास्टर से नहीं पढ़ेगी। हम दोनों चल रही हैं।

कालिकाप्रसाद ने जरा तीव्र स्वर में कहा—चल-चल बहुत बात न बना। मालूम पड़ता है एक मास्टर तेरे लिये भी लाना होगा। दिन भर खेलती रहती है।

मास्टर के नाम से सहमती हुई कमलावती अपनी सहेली का हाथ पकड़कर उस कालिकाप्रसाद के पास ले आई।

दीनानाथ कर्मोपदेश की तमाम बातें भूलकर एक साधारण मास्टर की तरह उस अज्ञात अपरिचित बालिका को पढ़ाने लगा। थोड़ी देर में कालिकाप्रसाद घोड़े से उतरकर नीचे चला गया।

[८]

रात को बड़े गर्व के साथ कालिकाप्रसाद ने अपने पिता के सामने

कहा—बाबूजी, मैंने ठीक कर दिया है।

पिता ने पूछा—क्या दीनानाथ ने आना स्वीकार कर लिया है? वह बड़ा ऐशपसंद लड़का है तुम जरा उसका फिक्र रखना। वह किसी काम में भी लगा सकेगा इसका मुझे विश्वास नहीं।

कालिकासहाय—जी नहीं अब वह राज करेगा।

पिता—हां अब तो बहुत ठीक। बेचारी गरीब लड़की का जीवन सुधर जायगा और दीनानाथ कहां प्रस्ताव होने से मनमाना न कर सकेगा।

पिता ने ही नहीं माता ने भी कालिकासहाय को उसकी सफलता पर बहुत साधुवाद दिए। तमाम घर के लोग उसकी तारीफ करने लगे। अकेली कमलावती की माई को योजना बिल्कुल पसन्द न आई। वह अपने गाल फुलाए हुए एक ओर को बैठी रही। लेकिन उसका किसी पर कुछ असर नहीं हुआ। कमलावती यद्यपि दिन में कई बार लड़ाई झगड़ा करती थी पर वह उसको पक्की करती थी कि लड़ झगड़कर भी उसका अपनी सखी पर जो अधिकार है वह किसी दूसरे का हरदम प्यार करके भी नहीं हो सकता।

दीनानाथ दो-तीन दिन तक बड़े उत्साह से उस अनाथ बालिका को पढ़ाने आता रहा। उसी थोड़े-से समय के प्रयास ने उसके जीवन की धरा में अपूर्व आकांक्षाओं की सृष्टि कर दी। यद्यपि प्रकाश्य रूप में वह उन्हें समझ नहीं सका पर उसकी सूक्ष्म हृदय के लिए उनका आभास ही काफी था। यही वजह थी कि अन्तरालास के साथ साथ ग्लानि का एक भाव भी उसके हृदय में अपनी जड़ गहरी जमा रहा था।

एक दिन शाम को जब वह लौटकर आया तो उसके हृदय में बड़ी अशान्ति पैदा हो गई। उसे ऐसा अनिश्चय रहा कि वह गन्धमुख कई दिन से अपना कर्तव्य पूर्ण नहीं कर रहा है। [illegible] भाग में वह अपने व्यवहार में कोई कुछ नहीं कर। [illegible] एक हिचकिचाहट आ गई है। वह [illegible] उसे प्रतीत हुआ जैसे कालिकाप्रसाद ने उसे [illegible] दिया है। [illegible] कर उसने सांसारिक दृष्टि से [illegible] कर ली है; पर वास्तव में उसने अपनी आध्यात्मिक [illegible] है।

दीनानाथ ने [illegible] कि वह ऐसा न होने देगा। वह अपने [illegible] मित्र को [illegible] जीवनमय करेगा।

अब दूसरे दिन से वह पूर्णतया [illegible] तत्परता से अपने कार्य में व्यस्त हो गया। मास्टर के रूप में कालिकाप्रसाद के मकान की तरफ जाना बन्द कर दिया और [illegible] कमलावती तो उसके इस कार्य से प्रसन्न ही हुईं।

[आठ]

कई दिन प्रतीक्षा करने के बाद भी जब कालिकाप्रसाद न आया तो दीनानाथ से रहा न गया। वह खुद ही उसकी तलाश में निकल पड़ा। आज उसने तय कर लिया था कि कालिकाप्रसाद की खबर लेनी ही होगी।

वह बड़ी तेजी से अपने मित्र के मकान की तरफ दौड़ गया।

कालिकाप्रसाद का मकान सड़क पर था। दूर से उसका द्वार नजर

आता था। दीनानाथ ने देखा, द्वार खुला पड़ा है। उसने मन ही मन खुश होकर कहा—आज अच्छा मौका है। कानून को एक बार छका चुका हूँ आज उसको मसल डालूँगा। पाप के मूलोच्छेद से बढ़कर दूसरा पुण्य इस जीवन में है कहाँ? यह जेठ या कानून सबसे बड़ा पाप है। इसी के निमित्त से आज यह संसाररूप महाग्नि प्रज्वलित हो रही है और उसमें जल रही हैं असंख्य आत्माएं।

वह बड़ी तेजी से, तीर की तरह, कालिकासहाय के मकान में चला गया। उसका हाथ बराबर कमर की छुरी पर था। पहले वह सीधे कालिकासहाय के कमरे की तरफ गया। वहाँ कोई न था। वह दूसरे कमरे में पहुँचा वहाँ भी कोई न था। ऊपर के तमाम कमरे देखकर नीचे उतर आया, भीतर मकान में प्रवेश किया।

अन्दर पैर रखते ही उसने देखा कि घर के सब लोग बरामदे में इकट्ठे हैं। बड़ी दौड़-धूप और परेशानी का दृश्य उपस्थित हो रहा है। वह झटपट वहाँ जा पहुँचा।

वह मृत्यु को देखकर खुश होता था लेकिन आज वह रो पड़ा। उसने सजल नेत्रों से अपने मित्र के पिता से पूछा—क्या हुआ है? कालिकासहाय कहाँ है?

वे कुछ भी जवाब न दे सके। उसी समय कालिकासहाय डाक्टर को लेकर आया। दीनानाथ बड़ी दीनता के साथ उसकी तरफ बढ़ा लेकिन कालिकासहाय उसकी तरफ ध्यान न दे सका। वह डाक्टर को कुर्सी देकर घुटनों के बल चारपाई की पट्टी पकड़कर जमीन पर बैठ गया और रोगिणी

को पुकारा—राजदुलारी !

राजदुलारी बेहोशी की वजह से आँखें न खोल सकी। डाक्टर ने बड़ी देर तक नब्ज हाथ में लेकर देखा और कालिकासहाय को साथ लेकर वह बाहर निकल गया।

दीनानाथ पागल की तरह वहीं खड़ा रह गया। उसके कानों में बराबर राजदुलारी का नाम गूँज रहा था। पहले भी यही नाम एक बार उसके कान में पड़ चुका है इसका उसे ध्यान न था। राजदुलारी को पढ़ाते समय तो वह कुछ भी उससे पूछने का साहस न कर सका था। अपने मित्र से भी विशेष कोई बात पूछने की कभी उसने उत्कंठा न दिखाई थी फिर भी वह नाम से किस तरह परिचित था।

कालिकासहाय दवा लेकर लौट आया। दीनानाथ शोक से बेहद उत्तेजित हो रहा था। उसने कालिकासहाय को रोककर पूछा—डाक्टर ने क्या कहा।

कालिकासहाय ने रूखे मुँह से उत्तर दिया—कहा है कि ईश्वर ही मना करे। आशा तो कुछ है नहीं एकाएक आघात लगा है। उसकी कमजोरी देह समाप्त नहीं मची है।—साथी मां! प्याली दवा पिला दूँ। आज रात भर जागना पड़ेगा। आप और पिताजी दो दिन से जाग रहे हैं। आज मैं जाग लूँगा। आप जाकर पड़ रहिये जरूरत होने पर बुला लूँगा।

वह उठकर नहीं गया। कालिकासहाय ने दवा पिलाकर फिर सोने को कहा। बड़ी मुश्किल से सब लोग वहाँ से गए।

दीनानाथ अब सब सोचकर-सा बैठा था। उसने एकांत पाकर उलाहने के दो तीन शब्दों में ही हृदय की समस्त वेदना उंडेलकर पूछा—मुझे खबर ही न दी।

कालिकासहाय ने धीरे से कहा—तुम मृत्यु को ही जीवन समझते हो इसलिये यद्यपि राजकुमारी ने स्वर्ण कुमार की तीव्रता के समय तुम्हें कई बार याद किया था।

दीनानाथ का सारा शरीर कांपने लगा। राजकुमारी! राजकुमारी! उसके कानों में गूंजने लगा। उसकी आंखों के सामने उस वृद्ध पुरुष की समस्त बातें प्रत्यक्ष हो उठीं। उसे ऐसा मालूम पड़ा जैसे समस्त संसार चक्कर लगा रहा है। वह आरामकुर्सी पर बेहोश होकर गिर पड़ा।

कालिकासहाय रोगियों की श्वास की गति पर ध्यान दे रहा था। वह दीनानाथ की हालत का अनुमान नहीं कर सका।

थोड़ी देर में दीनानाथ को होश हुआ। सिर उठाया देखा—कमरे में तेल के दिए की बत्ती धीमी जल रही थी। कालिकासहाय भी अपनी कुर्सी पर ऊंघ रहा था।

दीनानाथ ने मित्र का कंधा हिलाकर कहा—तुम जाकर लेटो। मैं बैठा हूं। दिन में सो चुका हूं, मुझे बिलकुल नींद नहीं है।

कालिकासहाय—नहीं।

दीनानाथ—क्यों नहीं जाओ तुम जाकर लेट रहो।

कालिकासहाय—डाक्टर की ताकीद है। आज की रात्रि अन्तिम है। मैं आज उठकर न जाऊंगा।

दीनानाथ सुन न सका, उसकी आँखों में आँसू की बूँदें झलमलाने लगीं। कालिकाप्रसाद ने कहा—यह क्या, तुम तुम ...इस तरह !

हाँ, भाई—कहकर दीनानाथ चुप हो गया। आगे उससे बोला न गया। कालिकाप्रसाद उसके मनोभाव को देखकर वहाँ से उठ गया।

दीनानाथ खोमिली के हवाले पर एकटक ध्यान लगाए बैठा रहा। जरा भी स्पंदन होने से वह सजग हो जाता था। उसके टूटे हुए हृदय में एक ही अभिलाषा थी। वह भी पूरी न हो सकी। राजकुमारी ने आँखें न खोलीं। न खोलीं। रात्रि के अवसान के साथ उसके जीवन का भी अवसान हो गया।

उसके मृत शरीर में भी जीवन का स्पंदन खोजता हुआ दीनानाथ विकल भाव से चारपाई पर बैठा रहा। जिसका समाप्त समय बराबर मृत्यु में ही मुक्ति का अस्तित्व मानने में व्यस्त रहता था, वह आज जीवन की एक-एक श्वास के लिये तरस गया।

निर्मम में ममता का स्रोत फूट पड़ा। पत्थर में करुणा की रागिनी बज उठी। आशाकरण निष्ठुरता की दृढ़ दीवार एक ही आघात में छिन्न भिन्न हो गई। हाय रे ! परिवर्तन ! दीनानाथ भुपचार भावों की उन्मत्त लहर में राजकुमारी की मृत्यु को अपनी हथेलियों की मुट्ठी से अलग रखना चाहता है पर न जाने कौन आकर उसका नाम फिर जोड़ देता है। अदृश्य के उस हाथ को रोकने की क्षमता कहाँ ? वह बेहद उद्विग्न और उत्तेजित होकर इधर उधर देखना चाहता है पर कुछ दिखाई नहीं

पड़ता—कुछ समझ में नहीं आता । संसार के पथ-प्रदर्शक को आज अपने पथ-प्रदर्शन के लिए किसी की नितान्त आवश्यकता है ।

व्यवधान

हिमालय की तलहटी में सुविस्तृत कान्तार के अन्तर से हटकर, स्वच्छ-सलिला सरिता की कमर में सटकर हुआ एक बड़ा-सा समतल भूखण्ड पड़ा था। उसमें नील-नारंगी की किस्म के बहुत से बगली झाड़ थे। बीच बीच में तरह-तरह के पहाड़ी वृक्ष विशेषरूप से लगाये गये थे उनके पनपने के लिए पर्याप्त साधन भी जुटाये गये थे। उस भूभाग का तीन चौथाई हिस्सा हरित श्यामल घास से ढका हुआ था। शीतल वायु के झोंकों से एक साथ असंख्य पत्तियों के हिल उठने से एक विचित्र प्रकार का आनन्द संगीत हृदय में भर जाता था। उसके बीचोंबीच एक उद्धत ढंग से बनाया हुआ मकान था। ठीक बौद्ध-स्तूप की तरह, पर देखा—अनुभवज्ञ हाथों की कारीगरी का सजीव नमूना। ऐसा जान पड़ता था मानों अमरेश्वरी की अलौकिक रूप-राशि की अकस्मात् एक झलक पाकर आदिपुरुष सब कुछ भूलकर उसके पीछे सघन कान्तार की ओर दौड़ गये हों और उनका भूमिशायी मार्तंग चुपचाप खड़ा रह गया हो।

उस स्तूपाकार एकान्त भवन में उन्नत मस्तक, उभरे वक्षस्थल और ठन्डी हुई उमंगोंवाले, राम चक्रवर्ती की तरह, दो युवक रहते थे।

एक का नाम मदन और दूसरे का किशोर था। दोनों हृष्ट थे। पृथ्वी को जोतकर बोना, धान्य को इकट्ठाकर और फल-फूलों को भरकर राजधानी में भेज देना, बस यही उनके काम थे। वे दोनों एक ही बचपन को उल्लासक मूर्ति थे। साथ-साथ रहे थे। साथ साथ खेले-खाये थे। साथ ही साथ अवस्था की परिवृत्ति के साथ बढ़े थे। उनके दो शरीरों में विधाता ने एक ही प्राण की प्रतिष्ठा की थी। एक का दर्द दूसरे की आह थी। एक का पसीना दूसरे का रक्तस्राव था।

पेड़ों में बहारें आतीं और चली जातीं। फूलों में यौवन निखरता और खिलता और बिखर जाता, पर उन दोनों के हृदय प्रेम की धार से कसकर बँधे थे। मलयपवन के उत्तरामिमुख झोंकों को साथ ही साथ आलिंगन करते थे। हँसती हुई कलियों को कभी अकेले में देखकर खुश होने का लोभ किसी के मन में स्थान न पाता।

वे दिन उनकी विजय के दिन थे। पराजय का नाम उनके जिन्दादिल कानों के लिए अपरिचित था।

[दो]

अनायास ही दूसरी कुटी का जन्म हुआ। उसमें रहने के लिए आकाश से एक चन्द्रमा उतरकर आया। वन-श्री शोभामय हो गई पक्षियों के गान में माधुरी भर गई फूलों से हँसी झरने लगी और लहरों में जीवन प्रकंपित होने लगा।

उस कुटी के झरोखे सभी पगडंडियों पर झाँकते थे। किधर से

भी निकला बातावन की आँखें खुली हुई मिलती थीं। कुटी की स्वामिनी अपने झरोखे में बैठकर किसी की प्रतीक्षा करती थी। कभी द्वार पर रखाल की डाल का आसन लेकर पीठ पर बिखराये हुए केशों को सुखाती और कभी मेंहदी रचाये हाथों से भौंरों को उड़ाती हुई कलियाँ चुना करती। उसकी हँसी में फूल झरते थे। उसकी चञ्चल चितवन में अद्भुत सरसता था।

चितोर और मदन हँसते हुए घर से निकले थे। लेकिन वह हँसी कहीं राह में ही रह गई। खेत निराते समय पीचे खींचते समय वे दोनों एक ही विषय का चिन्तन कर रहे थे पर कोई कुछ न कहता था।

वह कौन है? उसने किसकी ओर देखा था? देखा दोनों ही का हाथ पर अवश्य मेरी ओर विशेष रूप से। उसकी दृष्टि में कैसी हँसी भी थी। उस हँसी में कोई संकेत भी था। और वह तो बिलकुल स्पष्ट ही था—वही सोच-सोचकर उन दोनों के हृदयों में भेद-भाव का जन्म हुआ। अभिनवता में अन्तर बढ़ चला।

[तीन]

उस दिन से मदन और चितोर का किसी ने साथ आते जाते न देखा। घर से निकलते तो दोनों के दो जुदा रास्ते होते। एक पूरब चलता तो दूसरे का पश्चिम जाना आवश्यक होता। एक इस कोने पर काम करता तो दूसरा खेत के उस कोने पर। घर आते तो आगे-पीछे। एक का बिस्तर एक ओर लगता तो दूसरे का दूसरी ओर। खाने-पीने में भी कोई किसी की प्रतीक्षा न करता। बातों में उदासीनता थी, व्यवहार में एक तरह का

विचित्र अलगाव। दोनों-दोनों की आँखों से बचकर उस लावण्यमयी सुन्दरी की कुटी की ओर जाना चाहते तो चुपचाप खिसक जाते। एक दूसरे को कानों-कान खबर न होने देने के लिए भरसक सतर्क रहता। डर था कहीं पहले ही दूसरा आकर उस पर अपना असर न डाल दे।

दोनों छिप छिपकर पहुँचने लगे। परिचय हुआ और निर्जनता की सुविधा पाकर बहलती की तरह बढ़ गया। आलाप होने लगा फिर भेंटें चढ़ाई जाने लगीं। अपना-अपना पुजारा होकर दोनों ही भक्त एक दूसरे से बचकर जाने लगे। एक पश्चिम-द्वार से जाता तो दूसरा पूर्व द्वार से। एक सन्ध्या की लाली के साथ पहुँचता तो दूसरा सूर्योदय की किरणों के साथ जाकर अपना अर्घ्य समर्पित कर आता। जो फूल किसी समय देवार्चन के उपकरण थे वे आजकल न जाने किस तरह जाकर उस रमणी का शृङ्गार करते। पुष्प-गंधविहीन भूमि धूसरित देव-प्रतिमा की ओर किसी का ध्यान न जाता। सजीव-साकार सौंदर्य प्रतिमा के सामने प्रस्तर-मूर्ति की कौन परवाह करता?

घर में, घर से बाहर जो कुछ दर्शनीय और वस्तुमूल्य मिलता वह देवीजी के चरणों में अर्पित हो जाता। रमणी के सामने दोनों ही अपने को तमाम सम्पत्ति का स्वामी बताते। कोई भूलकर भी अपने साथी का नाम जबान पर न लाता।

कोमलाङ्गी युवती इन दोनों बलशाली युवकों के विचित्र आचरण पर हँसती और तरस खाती थी। मनुष्य अपने उद्दण्ड बल पराक्रम का चाहे जितना गर्व करे, पैरों की चमक से पृथ्वी को कंपाने की शक्ति भले ही

रखता हो, पर सुन्दरी तरुणी युवती के समक्ष वह सदा दया का पात्र है। उसके कोमल बाहु पाश के सामने उसकी तलवार कुंठित हो जाती है। उसकी मीठी-मन्द मुसकान का लोहा बड़े से बड़ा योद्धा मानता है। इसीलिए वह युवती भी इस मदोन्मत्त जुगुल जोड़ी पर असीम कृपा रखती थी। वे उसकी दया के ही पात्र थे।

[चार]

मदन और किशोर अब इस प्रकार प्रेम के चक्कर में पड़ चुके थे। जब दोनों नित्य उस युवती के सामने अपनी नई-नई लालसाएं ले जाकर अर्पित कर देते थे, जब पारस्परिक सौहार्द का बन्धन खूब ही शिथिल हो गया था; उस समय उनकी पराजय अवश्य में झोंके खा रही थी। प्रणय-प्रतिदान का जितना ही आश्वासन उन्हें मिलता था, मनुष्य का महत्-तत्व उतना ही उनके पास से खिसकता जाता था।

उसके जीवन की खुशी नष्ट हो चुकी थी। विलास ने आत्मा के पवित्र भाव को दूषित कर दिया था। साधनहीनों ने घर की अन्नपूर्णा लक्ष्मी का द्वार बन्द कर दिया था। खेतों में शस्य-श्री की हरीतिमा नहीं लहराती थी। सरिता के सूखे हुए जल में फूट पड़नेवाले कमलों की शोभा से प्रान्तर प्रदेश शून्य हो गया था। कुसुम-समूह का मकरन्द पतङ्ग की दया से वसन्त के प्रभात में ही लुप्त जाता था पर उधर देखता ही कौन? किसे यह अब ताकते रहने का अवकाश रह गया था?

निसर्ग की रमणीयता, वसुन्धरा की कान्ति और कान्तार का

सहायस अपना अपना स्थान छोड़कर जैसे उस सुन्दरी सलोनी युवती के नयन विलास में ही जा बसे थे। उसी की चितवन में अपने चिरवाञ्छित चिरा-राधित रूपसौष्ठव का समाप्त हुआ देखकर वे युवक युगल भी जैसे प्रतिपल उसकी ओर खिंचे जा रहे थे। अवसर पाते ही उनमें से प्रत्येक उसकी अनुपम छविमयी रूपमाधुरी को आँखों के रास्ते पी जाना चाहता था। उसकी लावण्य-खचित अभिनव पुरुष-प्रतिमा को अपने हृदय-मन्दिर के निभृत अन्तराल में छिपा रखना चाहता था।

[पाँच]

युवती का नाम मालती था पर क्या कुसुमिता मालतीलता उसे कहती थी! मदन और किशोर के मूक प्रणय-निवेदन की भाषा पढ़ने में मालती को प्रयास नहीं पड़ा था।

एक दिन उसने किशोर से एकान्त पाकर कहा—आपको यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि मैं अब सामाजिक जीवन में लग जाना चाहती हूँ। नगर से बाहर समाज से दूर रहकर भी मुझे उसके निकटत्व की आवश्यकता प्रतीत होती है। आशा है आप मुझे सहायता देंगे। मैं देखती हूँ इसके बिना हम लोगों का स्नेह चिरस्थायी नहीं हो सकता। जैसे जिसके स्वार्थ की सीमा जहाँ पर अन्त होती वहीं उसके सौहार्द का भी लोप हो जाता। किशोर का हृदय खुशी से नाच उठा। इन्हीं बातों को सुनने के लिए वह अधीर हो रहा था। मालती ने फिर कहा—उसके लिये इसी पूर्णिमा का दिन निश्चित है।

फिर क्या था—किशोर सहसमुक्त होकर उस नवीन योजना का हृदय से स्वागत करने लगा। उसके प्रेम में आज विशेष मृदुता थी।

मालती ने उस दिन मीठी-मीठी मृदुल हँसी हँसकर और कुछ-कुछ लजाकर उसे विदा किया और चलते चलते अनुराग कर दिया—शास्त्र की मर्यादा के विरुद्ध अब विवाह से पहिले भेंट न हो सकेगी।

मदन के साथ भी यही व्यवहार हुआ। उस दिन दोनों ही खुशी से फूल रहे थे और छिपे छिपे आपसी कर रहे थे कि कहीं दूसरे पर रहस्य न प्रकट हो जावे। हृदय से नींद उड़ गई थी। खुशी से भूख-प्यास हरण हो गई थी। बस, उसी मंगलमहोत्सव की उत्सुक प्रतीक्षा थी।

दोनों ने ब्याह के लिये बड़ी तैयारियाँ कीं—अलग अलग गुपचुप और बिल्कुल एक दूसरे से पृथक्।

[छः]

मालती का आश्रम फूलों से सजा था। नवीन लताओं ने बढ़कर उसके द्वार पर बन्दनवारें बाँधी थीं। वाटिकाओं के द्वार पर झूलती हुई शाखाओं पर बैठकर कोकिल मंगल गान गा रही थी।

मालती ने भी अपने शरीर को वस्त्राभूषणों से सजाया था। केसर के रंग में रंगी हुई साड़ी उसकी देह-लता में मिली जा रही थी।

दासी ने द्वार खोलकर बड़ी शिष्टता से मदन का भीतर बुला लिया। उसको लाई हुई अमूल्य भेंट लेकर मीठी निगाह से मुस्कराते हुए

एक ओर रख दी।

मदन ने अपना स्थान लिया ही था कि किशोर ने प्रवेश किया। उसकी भी अनुपम मदन-मूर्ति को दासी ने उसी तरह लेकर रख लिया। किशोर भी वहीं मदन के नीचे बैठ गया।

आज ही प्रथम बार वे दोनों मालती के यहां साथ-साथ पधारे थे। दोनों का ठाठ निराला था। दोनों राजकुमारों की तरह सजकर आये थे, और इस प्रकार बैठे थे जैसे एक दूसरे को जानता ही न हो। दोनों मन ही मन कुढ़ रहे थे।

इसी समय दोनों की आंखों में अविश्वास और आश्चर्य की सृष्टि करते हुए मालती ने प्रवेश किया। आज लज्जा और संकोच से उसकी शोभा अपार हो रही थी। वह एक अनिन्द्य सुन्दर पुरुष के हाथ का आश्रय लिए हुए थी। मदन में प्रवेश करते ही उसने किंकर्तव्यविमूढ़ इन दोनों पुरुषों को अनेकानेक धन्यवाद देते हुए कहना आरम्भ किया—आप लोगों को कितना कष्ट हुआ है मैं जानती हूं। आप ही की असीम कृपा से आज सुअवसर प्राप्त हुआ है जब कि मेरे आराध्यदेव यहां उपस्थित हुए हैं। जिनके लिये मैंने जीवन की अमूल्य घड़ियों में एकांत निर्जन में कठोर तपस्या की थी आज वे आप लोगों के सामने हैं। आप लोग ही हमारे माता पिता भाई बन्धु हैं। आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपने स्वामी की चरण सेवा के उपयुक्त हो सकूं।—पर वे दोनों अवाक् एक दूसरे को ताक रहे थे। उनकी मुख श्री मलिन और विवर्ण हो गई थी। कोई उत्तर मुंह से न निकलता था।

वहां से लौट आने पर एक बार फिर मदन और किशोर एक हो गये। अभी तक वे हिमालय की सघन सुन्दर उपत्यका में विचरण करते हैं। पार्वती वहां से चली गई है, पर उसकी याद कभी कभी उन दोनों के मन को शान्ति से भर देती है। वे अपने उस पागलपन पर हंसते भी हैं और शर्माते भी पर मुंह से एक शब्द भी उस संबंध में निकालते डरते हैं।

निष्फल-स्वप्न

जहाज के कप्तान हडसन ने अपने एक मल्लाह के कन्धे में उंगली गड़ाकर कहा—लानटोने ! वे क्षितिज पर बादल उठ रहे हैं ! क्या तुम उनके विषय में कुछ कह सकते हो ?

लानटोने ने गर्दन फिराकर जवाब दिया—मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूं कि वे इतनी तेजी से बढ़ रहे हैं, जिसका उन्हें कभी अधिकार नहीं।

हडसन ने जरासा हंस दिया फिर कहा—उनके अधिकार का विचार करना हमारे वश के बाहर की बात है।

लानटोने ने उसी तरह लापरवाही से सिर हिलाकर कहा—बेशक !

कप्तान अपने कर्मचारियों को हुक्म देने वाला था कि हवा का एक जोरदार झोंका आया, और जहाज तीन फर्लांग की दूरी पर जा पहुंचा। हडसन ने पैर को नहीं जाने दिया। उसके लिये यह आश्चर्य बात थी। उसने चिल्लाकर कहा—तूफान।

दूसरे ही क्षण एक-दो-तीन झोंकों ने जहाज को बुरी तरह झकझोर डाला। जरा पहले समुद्र जो शान्त और सौम्य था, उसने ऐसा भयङ्कर रूप धारण किया जिसकी उपमा देखकर समझना असंभव है।

पर्वताकार भीषण लहरों पर वह हजारों मन का जहाज तुच्छ रुई की तरह काँपने लगा। ऐसा घोर विकट शब्द होने लगा कि कानों के परदे फटे जाते थे। मालूम पड़ता था कि जैसे सारा ब्रह्माण्ड उलट पुलट कर प्रलय की तैयारी में लगा है। बाणों की तरह मतवाली अनन्त जलराशि और उसमें वे तरंग आकाश-स्पर्शी पर्वत थे रुईयों की तरह डेक के ऊपर से निकल जाती थीं।

दिशाओं का ज्ञान नहीं रह गया था। एकाएक अभूतपूर्व वज्रनाद से उस मजबूत तूफान का भी हृदय हिल गया। जहाज एक नंगी कठोर चट्टान से टकरा गया। दूसरे क्षण उन्मत्त लहरों और उद्दण्ड वायु के झोंकों से जहाज और अर्धमृत लोगों के शरीर समुद्र में बिखर गये। जहाज के टूटे हुए मस्तूल बेकार हो गये। सारे कल पुर्जे लहरों में इधर उधर बहने लगे। देखते देखते जहाज का नाम निशान मिट गया। केवल विराटकाय तरंग-समूह अपनी दुर्जय शक्ति का अपूर्व प्रदर्शन करते हुए लहरों का हाहाकार मचाये रहे। मनुष्य की क्षुद्र-हीन प्रेरणा स्वप्न के साम्राज्य की तरह विलीयमान हो गई।

[दो]

नीरव अन्धकार को बेधकर शुभ्र, सौम्य शान्त और उज्ज्वल प्रभात धीरे-धीरे पूर्व आकाश में उदय हुआ। कहाँ वह भीषण तूफान और कहाँ यह महाप्रशान्त! चाँदी-सोने के सितारों से उज्ज्वल हँसते-हुए काल की रात्रि में कितना भिन्न था! लेकिन आश्चर्य-चकित दृष्टि के साथ वही

कितना समीप था ? सामने क्षितिज तक फैली हुई अपरिमित नील जल राशि कितनी शांत और अचंचल थी ! उसे देखकर कौन कह सकता था कि यही सौम्य सागर संक्षुब्ध होने पर कैसा उन्मत्त हो जाता है ! जब जानसोने ने सिर उठाकर सूर्य की अरुण-किरण की ओर देखा, तो ये सारी बातें उसके मन में एक साथ आकर प्रविष्ट हो गईं । उसने अपने शिथिल शरीर को बालू के उसी बिछौने पर आलस भाव से डाल दिया । आंखें बन्द करलीं । और कल रात्रि की घटना का अपनी समस्त शक्ति से स्मरण करने लगा । लेकिन वह कैसे किनारे आ लगा जहाज क्या डूब गया और सब लोगों की क्या दशा हुई ! इसका कोई आभास उसे न मिल सका ।

जानसोने ने आंखें खोलकर एक बार अपने चारों ओर देखा । सामने वही महोदधि हहराकर नीलवर्ण मेघ की तरह चुपचाप सो रहा था । ऐसा प्रतीत होता था जैसे कल की उद्दाम चेष्टा के पश्चात् उसे पूर्णविराम की आवश्यकता हुई है, या मन ही मन ग्लानि के भाव से भरकर मुंह ऊंचा नहीं कर रहा है । जानसोने उठकर बैठ गया पीछे निर्जन बालुकामय प्रदेश था । उसके स्वभाव में सदा से जो लापरवाही और मस्ती थी वह इस समय न जाने कहां दूर हो गई थी, और उसका फीका मुरझाया चिन्ता के गम्भीर मेघों से आच्छन्न हो गया था । वह उठकर खड़ा हो गया और चारों ओर व्याकुल दृष्टि दौड़ाने लगा ।

समुद्र के महाभयंकर तूफान से या कहिये मृत्यु के मुंह से निकल आने की उसे खुशी होनी चाहिये थी । जिस दैवी शक्ति ने उसे सुरक्षित उपकूल पर ले जाकर सुला दिया था, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने के

किया। उसकी नाक के पास हाथ रखकर देखा दिल की परीक्षा की, पर उसकी समझ में कुछ भी न आया। फिर भी वह बराबर यत्न करता रहा। उसने उसे उल्टा लिटा दिया। आध घण्टे बाद एक हल्का स्पन्दन प्रतीत हुआ। लानतोमे को जैसे एक भारी साम्राज्य मिल गया। उसने उसकी सुश्रूषा में अपनी सारी अक्ल खर्च कर डालने में कोर-कसर न की। दूसरे दिन प्रातःकाल जब वह उठकर बैठ गया तो लानतोमे का हृदय खुशी से नाच उठा। उसने बार-बार लानतोमे की कृपा के लिये धन्यवाद का बोझ उस पर लादा तो वह सचमुच ही अपने आपको बड़ा कर्मकुशल समझने लगा।

लानतोमे के नवीन साथी का नाम जिमेरिन था। वह बड़ा ही हसमुख और विनोदप्रिय था। बात-बात में उसे हँसी का मसाला उससे सहज ही मिल जाता था। जिस गुण के लिये चार्लीचैपलिन कई सहस्र रुपये प्रतिसप्ताह पैदा करता है वह जिमेरिन में उससे किसी कदर कम न था। उसके साथ उस निर्जन देश में भी लानतोमे के दिन मजे से कटने लगे। जिमेरिन के उस अलौकिक गुण का वहाँ कब इतना ही मूल्य था।

वे दोनों पहाड़ियों पर घूमते थे। कन्दराओं में विचरते थे। समुद्र के किनारे बैठकर मछली पकड़ते और और जहाजों की प्रतीक्षा किया करते थे। उस छोटे से द्वीप का संसार एक तरह से निराला ही था। अजीब-अजीब जानवर थे। विचित्र तरह के फलफूल थे। किनारों पर समुद्री पक्षी अपने ताकतवर डैनों को फड़फड़ाया करते थे। कई महीने बीत गये पर कोई जहाज उधर आता नजर न पड़ा।

इसी समय लानतोमे एकाएक उछल पड़ा, और जोर से झंडी हिलाकर चिल्लाया। करीब दो मील की दूरी पर एक जहाज आ रहा था। अनुकूल बहने वाली हवा ने सौभाग्य से उसका संकेत उस तक पहुंचा दिया। एक क्षण में जहाज ने अपना रुख बदल दिया। अब मारे खुशी के लानतोमे पागल हुआ जा रहा था। पर जिमेरिन उसी तरह उदास भाव से उसकी ओर देख रहा था। आखिर उसने कहा—लानतोमे! यदि कभी तुम मार्सिलीज पहुंच जाओ तो पहाड़ी के उस पार माझियों की बस्ती में जरूर जाना। वहीं शहतूत के बगीचे के पास, अंगूर की बेलि से ढका हुआ, एक मकान मिलेगा। वह मेरी प्रेयसी का घर है। अगर वह उसमें न मिले—और नहीं मिलेगी क्योंकि आज शाम के बाद वह सदा से मेरी होकर भी मेरी न रहेगी—तो लोगों से पता लगा कर जरा उसके पास तक चले जाना। आज मेरे प्रतिद्वन्द्वी जोसेफ के साथ उसके जीवन का सम्बन्ध-सूत्र ग्रथित कर दिया जायगा। कृपाकर मिसेस जोसेफ के पास मेरी विपन्नता का समाचार पहुँचाना न भूलना कि जिमेरिन यहां से जाकर फौज में भर्ती हो गया था। धीरे धीरे सिपाही के पद से बढ़कर वह सेना का कप्तान हो गया। उसने अनेक युद्ध विजय किये। जितने भाग्य और वैभव की शर्त उसके पिता ने लगाई थी, उससे सहस्र गुना उसके पैरों पर लोटते थे। वह चाहता, तो बीच में ही लौटकर वे सारी शर्तें पूरी कर डालता। पर महत्वाकांक्षा ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। दुर्भाग्य उसे एक युद्ध में ले गया। पराजय हाथ रही। वह बन्दी हो गया। अनन्त दिशाओं तक व्याप्त महासागर के शून्य-निर्जन द्वीप में, एक अति भयंकर किले में बन्द कर दिया गया। सारे

उसका अनुमान करता। इसीलिए तीन बार पास से गुजर जाने पर भी उसने मार्सिलीज में जाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। सोचा था, जब कभी उस शहर में जाना होगा, तब देख लूंगा। यह दुखद-संवाद जल्दी न भी पहुँचाया जाय, तो कोई हर्ज नहीं और यह कौन कह सकता है कि वहां उसको सुनने के लिए कोई बैठा ही होगा। बरसों के पुराने और शिथिल प्रेम को कोई युवती अपने हृदय में पाल-पोस रही होगी, इस पर लानतामे को कतई विश्वास न था।

इसीलिए ठीक पांच बरस बाद उस शहर में जाने पर वह जहाज से उतरकर एलिजा का पता लगाने चला।

बड़ी मुश्किल से एक बूढ़ी औरत ने बतलाया—ठीक है उस तरफ पन्द्रह-सोलह बरस पहले एक घर था। वहां एलिजा रहती थी पर अब कई साल से वहां नहीं है। आप उस गांव की ओर चले जाइये, वहां मालूम कीजिये। शायद कुछ पता चले। यह तो बहुत दिनों की बात है।

लानतामे उधर गया। वहां न तो एलिजा का मकान था न अंगूर की बेलि। केवल खंडहर देखकर इतना ही अनुमान हो सकता था कि वहां कभी मनुष्य रहते थे। बहुत देर तक लानतामे वहीं एक प्राचीन वृक्ष की छाया में बैठा हुआ एलिजा की कल्पना करता रहा। फिर इधर उधर पूछताछ करने से मालूम हुआ कि वह किनारे से दूर किसी नगर में रहती है। साथ ही यह भी मालूम हुआ कि पिता की मृत्यु के बाद उसने जोसेफ को कोरा उत्तर दे दिया था कि पिता की प्रतिज्ञा पालन के लिए वह तैयार नहीं है।

आ सका इसलिए उसने अपना संदेश कहने को मुझे भेजा है। उसे स्वयं पता कि तुमने आसेफ से ब्याह नहीं किया है। आफ! नहीं तो वह जरूर ही आता। यही सब सोचकर उसने संसार त्याग दिया है।

इस तरह उसने मलिन वेश धारिणी मुरझाई हुई लता तुल्य बेचारी एलिजा से सारी कथा कह सुनाई। एलिजा की आंखों से झर झर आंसू गिरने लगे। वह देर से जाकर खाने के कारण लानतोने से किसी तरह नाराज न हुई बल्कि अपने ही मस्तक को पीट डाला।

जो भूल लानतोने ने स्वयं की थी उसके जघन्यत्वजनित ने तथा उस प्रवृत्ति-दुष्कृत के मार्मिक और करुण विरह ने उसे मजबूर किया, और वह अपने चाचा की बड़ी नाव में एलिजा को लेकर एक बार फिर तरंगाकुल महासागर के वक्ष को चीरता हुआ उस अनाम निर्जन द्वीप की ओर चल दिया।

अस्तगत सूर्य की आरक्त किरणों के साथ वह बोट भी नील-जल-प्रक्षालित ऊंचे किनारे से जा लगा। लानतोने झटपट ऊपर चढ़ गया रस्सी लाकर उसने एलिजा को भी ऊपर खींच लिया। देखा थोड़ी दूर पर जहां वह छः साल पहले नाव पर चढ़ा था, जहां वह जिमेरिन को मछली पकड़ते छोड़ गया था, वहीं ठीक उसी स्थान पर समुद्र की ओर ताकता हुआ वह अब भी बैठा है। वह झटपट एलिजा को लेकर उधर दौड़ा। सोचा था चुपचाप जाकर उसे सामने करके वह मित्र को चकित कर देगा। पर वहां पहुंचते-पहुंचते वे दोनों खुद ही चकित और मूर्तिवत् खड़े रह गये। आह! जिमेरिन का निष्प्राण शरीर दल दल में धंसा हुआ खड़ा था।

एलिजा और लानतोने दोनों की आंखों से आंसू ढुलक रहे थे। वह बेचारी सन्ध्या के अन्धकार में उसी तरह खड़ी-खड़ी सोचती रही कि उसका जीवन भी वैसा निष्फल-स्वप्न था।

मन की रानी

पड़ोस के घर में मारपीट के साथ ही चीखने और रोने की आवाज सुनकर रामसरन ने पत्नी से पूछा—सुनपना, पड़ोस कब से आबाद हो गया है ?

सुनपना—अरे, आज ही तो आये हैं ।

रामसरन—और आते ही

सुनपना—आते ही क्या घर-गृहस्थी में झगड़े लगे ही रहते हैं ।

रामसरन—तुम तो खुद कोतवाल से कम नहीं हो ।

सुनपना—मैं तो कोतवाल हूं । न होऊं तो थानेदारी तुम्हारी धरी रह जाय ।

रामसरन—यह तो मैं मानता हूं ।

सुनपना—न मानोगे तो कहां जाओगे ?

मार अब तक चल रही थी, बल्कि उग्रतर होती जा रही थी । सुनपना से नहीं रहा गया तो छत पर चढ़कर उधर झांका । अधेड़ सास कमसिन बहू की बेरहमी से पूजा कर रही थी ।

[चार]

तुम्हें दूसरा घर तलाशना होगा —बहू ने कहा।

'दूसरा घर ?' रामसरन ने पूछा।

'हां, आज ही।

'किसके लिए ?

'उस 'उसके लिए। बहू ने सुनकना की ओर संकेत कर दिया

'उसके लिए इस घर में जगह नहीं है ?'

'नहीं ?'

आंसू भरे सुनकना ने बहू के पांव पकड़ लिए।—'मेरे ऊपर दया करो, रानी ! मैं अब कहां जाऊंगी ? मेरा दुनिया में कौन है ?'

'तो मैं जाती हूं। बहू झमझम करती बाहर निकल गई।

सुनकना—अरे नहीं अरे नहीं, 'मन की रानी को जाने की जरूरत नहीं। मैं ही जाती हूं। मैं ही जाऊंगी।

सुनकना उसके पीछे-पीछे निकल गई।

खाली घर में बानेदार आंखें फाड़े खड़ा रह गया।